राहुल सांकृत्यायन

विविध प्रसंग

शुभनीत कौशिक

महापंडित राहुल

विविध प्रसंग

शुभनीत कौशिक

साझी विरासत प्रकाशन

कॉपीराइट © 2021 शुभनीत कौशिक

सर्वाधिकार सुरक्षित

इस पुस्तक का कोई भी भाग प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना, पुनर्प्राप्ति प्रणाली में पुनरुत्पादित या संग्रहीत नहीं किया जा सकता या इलेक्ट्रॉनिक, मैकेनिकल, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग, या किसी भी रूप में अन्यथा रूप से संचारित नहीं किया जा सकता है.

सामग्रियाँ

शीर्षक पेज

कॉपीराइट

राहुल सांकृत्यायन : घुमक्कड़ महारथी की जीवन-यात्रा

राहुल सांकृत्यायन और निराला

राहुल सांकृत्यायन और प्रेमचंद

राहुल सांकृत्यायन और नेहरू

राहुल सांकृत्यायन और पंडित रामावतार शर्मा

राहुल सांकृत्यायन और बिसराम

राहुल सांकृत्यायन और रूसी विद्वान बरान्निकोव

राहुल सांकृत्यायन और डॉ. श्चेर्वात्स्की

बौद्ध दर्शन के अध्येता : राहुल सांकृत्यायन और जॉर्ज रोयरिक

राहुल सांकृत्यायन और परमेश्वरी लाल गुप्त

राहुल सांकृत्यायन और बाबा प्यारे लाल बेदी

राहुल सांकृत्यायन और मेघनाद साहा

राहुल सांकृत्यायन और धर्मानंद कोसंबी

राहुल सांकृत्यायन और काशी प्रसाद जायसवाल

राहुल सांकृत्यायन और इतिहासकार बी.बी. मिश्र

राहुल सांकृत्यायन और ब्रिटिश इतिहासकार विक्टर कियर्नन

हिमालय के महान यात्री : राहुल सांकृत्यायन और स्वामी प्रणवानन्द

राहुल सांकृत्यायन और सदरूद्दीन ऐनी

राहुल सांकृत्यायन और सत्यानंद स्टोक्स
राहुल सांकृत्यायन और फ्रेडरिक (पहाड़ी) विल्सन
राहुल सांकृत्यायन और बलिया में भोजपुरी सम्मेलन (1948)
महापंडित राहुल सांकृत्यायन की जापान-यात्रा
'तुम्हारी क्षय' : राहुल सांकृत्यायन
किसान आंदोलन और राहुल सांकृत्यायन
राहुल सांकृत्यायन और नेपाल
राहुल सांकृत्यायन और मोमो
राहुल सांकृत्यायन और सिनेमा
लेखक के बारे में
इस लेखक द्वारा पुस्तकें

राहुल सांकृत्यायन : घुमक्कड़ महारथी की जीवन-यात्रा

महापंडित राहुल सांकृत्यायन का जन्म 9 अप्रैल 1893 को आजमगढ़ के पंदहा में हुआ। पंदहा यानी राहुलजी का ननिहाल, उनका पैतृक गाँव था कनैला। उनका बचपन का नाम था केदारनाथ पांडेय। स्कूल में पढ़ते हुए राहुल ने नवाजिंदा बाजिन्दा की कहानी 'खुदराई का नतीजा' पढ़ी। इसी कहानी में बाजिन्दा की ये पंक्तियाँ राहुल के लिए जीवनपर्यंत यायावरी की प्रेरणास्रोत बन गईं :

सैर कर दुनिया की गाफ़िल ज़िंदगानी फिर कहाँ

ज़िंदगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ।

यात्राओं का राहुल के जीवन में कितना महत्त्व था, इसका अंदाज़ा इस बात से लगा सकते हैं कि राहुलजी ने अपनी आत्मकथा लिखी तो उसका शीर्षक ही रखा : 'मेरी जीवन-यात्रा'। एक ही जीवन में कई ज़िंदगियाँ जीने वाले राहुल सांकृत्यायन साधु रहे, आर्य समाज से जुड़े, बौद्ध भिक्षु बने, समाजवादी और साम्यवादी आंदोलन से भी जुड़े रहे। वे राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाले स्वतन्त्रता सेनानी, किसान आंदोलन के नेता और जनता के प्रिय नेता भी थे। यात्री, इतिहासकार, पुराविद, नाटककार और कथाकार तो वे थे ही।

आज़मगढ़ में उनकी आरम्भिक पढ़ाई हुई। उसी दौरान वे घर से भागकर कलकत्ता चले गए। बाद में उन्होंने बनारस में रहकर शास्त्रों का अध्ययन किया। साधु बनने पर राहुल 'रामउदार दास' के नाम से जाने गए। इस दौरान वे छपरा स्थित परसा के मठ से जुड़े रहे और आगे चलकर आर्य समाज के सक्रिय सदस्य रहे और 'मुसाफ़िर विद्यालय' से सम्बद्ध रहे। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से भी जुड़े रहे और राष्ट्रीय आंदोलन में उन्होंने सक्रिय भूमिका निभाई। वर्ष 1921-22 के दौरान उन्होंने असहयोग आंदोलन में भाग लिया और जेल भी गए। वे छपरा जिला कांग्रेस के मंत्री तो रहे ही। साथ ही वर्ष 1931 में स्थापित हुई बिहार सोशलिस्ट पार्टी के संस्थापक-सदस्य भी थे। आगे चलकर वर्ष 1939 में उन्होंने बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी के गठन में योगदान दिया। किसान

आंदोलन में उनकी सक्रियता राहुल को कार्यानन्द शर्मा, सहजानन्द सरस्वती और यदुनंदन शर्मा जैसे किसान नेताओं के निकट ले गई। वे बिहार प्रांतीय किसान सम्मेलन के सभापति भी रहे। राजनीतिक सक्रियता के साथ-साथ ज्ञान, दर्शन और साहित्य में उनकी रुचि लगातार बनी रही।

समूचे भारतीय साहित्य को 'विश्व की रूपरेखा', 'दर्शन-दिग्दर्शन', 'यात्रा के पन्ने', 'सिंह सेनापति', 'मध्य एशिया का इतिहास' और 'वोल्गा से गंगा' सरीखी कृतियों से समृद्ध करने वाले राहुल बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। 'बेड़े की तरह पार उतरने के लिए मैंने विचारों को स्वीकार किया, नकि सिर पर उठाए-उठाए फिरने के लिए' - भगवान बुद्ध के इस वाक्य को अपना जीवन-दर्शन बना लेने वाले राहुल सांकृत्यायन के बारे में उनके साथी भदंत आनंद कौसल्यायन ने ठीक ही लिखा था : 'राहुल ने जब जो कुछ सोचा, जो कुछ माना, वही लिखा, निर्भय होकर लिखा। चिंतन के स्तर पर राहुलजी कभी भी न किसी सांप्रदायिक विचार-सरणी से बंधे रहे और न संगठन-सरणी से। वह 'साधु न चले जमात' जाति के साधु पुरुष थे।'

बौद्ध धर्मग्रंथों और दर्शन के प्राचीन ग्रन्थों की तलाश में राहुल सांकृत्यायन ने तिब्बत, नेपाल सहित अनेक दुर्गम क्षेत्रों में अपनी जान हथेली पर लिए हुए रोमांचक यात्राएं की। इन्हीं यात्राओं का फल था कि प्रमाणवार्तिक, प्रज्ञापारमिता (अष्टसाहस्रीका), मध्यांतविभंगकारिका, प्रातिमोक्षसूत्र, वादन्याय, वादरहस्य सरीखे विलुप्त हो चुके ग्रंथ सदियों बाद दुनिया भर के सामने आए। सरहपा और तिल्लोपा के 'दोहा कोश' से हिन्दी जगत का परिचय कराने का श्रेय भी राहुल को ही जाता है। अपनी महत्त्वपूर्ण किताब 'काव्यधारा' में राहुल ने स्वयंभू और पुष्पदंत जैसे विस्मृतप्राय कवियों से हिन्दी समाज को रूबरू कराया।

किताबों, पुरानी पाण्डुलिपियों को खोज निकालने की ऐसी उत्कट और अदम्य लालसा उनके मन में थी कि राहुल सांकृत्यायन अपनी किताब 'एशिया के दुर्गम भूखंडों में' लिखते हैं कि 'सुख, दुख,

मान-अपमान की परवाह नहीं, यदि कुछ काम की पुस्तकें प्राप्त हों।' उन्होंने सोवियत रुस, यूरोप, जापान, चीन, ईरान, श्रीलंका की यात्राएँ कीं, जिनका विवरण हमें उनकी पुस्तकों में प्राप्त होता है। राहुल जी वर्ष 1947 में बम्बई में आयोजित हुए हिंदी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के सभापति भी रहे। 14 अप्रैल, 1963 को राहुल सांकृत्यायन का निधन हो गया।

राहुल सांकृत्यायन : एक विराट व्यक्तित्व

'संस्कृति के चार अध्याय' जैसी किताब लिखने वाले साहित्यकार रामधारी सिंह 'दिनकर' ने राहुल सांकृत्यायन के बारे में एक अद्भुत संस्मरणात्मक लेख लिखा था। इस लेख में रामधारी सिंह दिनकर राहुल जी के बारे में लिखते हैं :

> *एक धर्म-प्रचारक, जिसमें उत्तरीय के सिवा धार्मिक परंपरा का कोई आडंबर नहीं, ऐसा विद्वान जिसने सारी विद्याओं में डूबकर केवल नास्तिकता को ग्रहण किया हो, साहित्य में रहते हुए जिसे राजनीति का मोह हो और राजनीति की ओर अग्रसर होते हुए जिसे कुछ घृणा, कुछ झिझक-सी लगे; युग-विधायक अनुसंधान करते हुए भी जिसे अपना श्रम व्यर्थ मालूम होता हो; इतिहास को मुर्दों का क्षेत्र कहकर जो ज़िंदों के बीच जीने की लालसा से रूस दौड़े और ज़िंदों के जीवन से मर्म पर व्याघात लेकर फिर मुर्दों के देश लौट आए; प्रकांड विद्वान, सांस्कृतिक क्रांति का उग्र नेता, क्रांतिदर्शी और विक्रांत परिश्रमी; संसार जिसे असाधारण एवं अज्ञेय रहस्य मानकर विस्मय करे, उसे साधारण-अतिसाधारण-मानकर खिल्ली उड़ाता-सा; देवताओं के सामने मनुष्य और स्वर्ग के सामने पृथ्वी को पूजने वाला; जो अपने तर्क के तीखे बाणों से परंपरा, रूढ़ि और प्राचीन संस्कारों पर कुटिल व्यंग्य कसने का आदी हो; धुन का पक्का, लगन का कड़ा; ऐसी विचित्रताओं का आगार है वह मनुष्य, जिसे हम राहुल सांकृत्यायन के नाम से अभिहित करते हैं।*

कृतित्व

राहुल जी ने उपन्यास, कथा-साहित्य, नाटक, जीवनी, यात्रा-वृत्तांत, निबंध जैसी अनेक विधाओं में अपने लेखन से हिंदी की दुनिया को समृद्ध किया। बाइसवीं सदी, जीने के लिए, जय यौधेय, मधुर स्वप्न, राजस्थानी रनिवास, विस्मृत यात्री, दिवोदास, निराले हीरे की खोज उनके उपन्यास हैं। सतमी के बच्चे, बहुरंगी मधुपुरी, कनैला की कथा उनके कथा संग्रह हैं। राहुल जी ने मार्क्स, लेनिन, स्तालिन और माओ की जीवनियाँ लिखने के साथ ही सरदार पृथ्वी सिंह, वीर चंद्र सिंह

गढ़वाली आदि की भी जीवनियाँ लिखीं। साथ ही, उन्होंने 'नए भारत के नए नेता' शीर्षक से दो खंडों में आधुनिक भारत के नेताओं और राजनीतिक कार्यकर्ताओं की जीवनियाँ लिखीं। साम्यवाद क्यों, पुरातत्व निबंधावली, दिमाग़ी ग़ुलामी, तुम्हारी क्षय, साहित्य निबंधावली, अतीत से वर्तमान उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं।

इस पुस्तक में हम राहुल सांकृत्यायन से जुड़े विविध प्रसंगों के बारे में पढ़ेंगे। ये प्रसंग राहुल और उनके समकालीनों से जुड़े हैं। जिसमें निराला जैसे साहित्यकार, नेहरू जैसे राजनेता, काशी प्रसाद जायसवाल सरीखे इतिहासकार, बरान्निकोव सरीखे सोवियत विद्वान और मेघनाद साहा जैसे वैज्ञानिक शामिल हैं। साथ ही, इसमें राहुल जी की नेपाल और जापान यात्रा, भोजपुरी से उनके जुड़ाव और सिनेमा से जुड़े उनके विचारों की भी चर्चा की गई है।

राहुल सांकृत्यायन और निराला

महापंडित राहुल सांकृत्यायन का विराट जीवन और उनका कृतित्व उनकी आत्मकथा में निखर कर सामने आता है। अपनी जीवन-यात्रा में राहुल जिन लेखकों, साहित्यकारों, राजनेताओं, दार्शनिकों, बौद्ध विद्वानों के संपर्क में आए, उनका विस्तृत ब्यौरा उन्होंने अपनी आत्मकथा में दिया है। 'राम की शक्तिपूजा' लिखने वाले महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला से अपनी मुलाक़ातों का विवरण राहुल सांकृत्यायन ने अपनी आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा' में बड़ी आत्मीयता के साथ किया है। निराला से राहुल सांकृत्यायन की एक ऐसी ही मुलाक़ात नवंबर 1942 में हुई थी। राहुल छपरा से होकर प्रयाग पहुंचे। 12 नवंबर 1942 को निराला उनसे मिलने आए और अपनी कविताएँ 'तोड़ती पत्थर', 'कुकुरमुत्ता' और 'बादल राग' भी उन्होंने राहुल को सुनाईं। इससे पूर्व भी राहुल दो बार निराला से मिल चुके थे और उन्हें 'असाधारण प्रतिभाशाली कवि' मानते थे।

निराला के औघड़पन के बारे में राहुलजी ने लिखा है कि 'भले ही निराला व्यवहार शून्य हों, भले ही अपनी मौज में वे कभी-कभी अपनी सुध-बुध खो देते हों, लेकिन निराला की देन हमारे साहित्य के लिए है, यदि उनको हम अधिक निश्चिंत, अधिक संतुष्ट रख सकें, तो हमारे साहित्य को और फायदा होगा। निराला के साथ आज के समाज ने जो उपेक्षा की है, उसके लिए अगली पीढ़ी को पछताना पड़ेगा।'

पाँच साल बाद 1947 में लिखी एक अन्य टिप्पणी में निराला को सिद्ध की संज्ञा देते हुए राहुल ने लिखा, मैं उन्हें चौरासी सिद्धों की कोटि में समझता हूँ, जिनका जाग्रत और स्वप्न का भेद मिट गया है। निराला कवि के तौर पर ही नहीं, मानव के तौर पर भी बेजोड़ हैं। जनवरी 1950 में जब राहुल कमला जी के साथ प्रयाग आए, तो वे निराला से मिलने गए। ख़ुद राहुल के शब्दों में, प्रयाग में आने पर निरालाजी से थोड़ी देर के लिए भी मिल लेना वे सौभाग्य की बात समझते थे। तब निराला 'साहित्य-संसद' में ठहरे हुए थे।

इस मुलाक़ात का ब्यौरा देते हुए राहुल लिखते हैं :

निराला पहले से कुछ कृश थे, नहीं तो वही प्रसन्न मूर्ति थी। बातें करते रहे, कभी हमसे और कभी अपने मन से, सिद्धराज जो ठहरे। वह दोनों लोकों में एक ही समय में विचरने में समर्थ थे – कभी जागृत जगत में और कभी स्वप्न जगत में। जिस व्यक्ति की जागृत और स्वप्न की सीमाएं टूट गई हैं, उसके लिए संयम रखना मुश्किल नहीं, असंभव है। निरालाजी इस सीमा के उच्छेद के बाद भी कड़े संयम और शिष्टाचार का पालन करते हैं, यह असाधारण है। कोई भी अपरिचित हृदय व्यक्ति उनके पास जाकर कभी निराश या अपमानित होकर नहीं लौटता। सभी उनकी मानवता की प्रशंसा करते नहीं थकते।

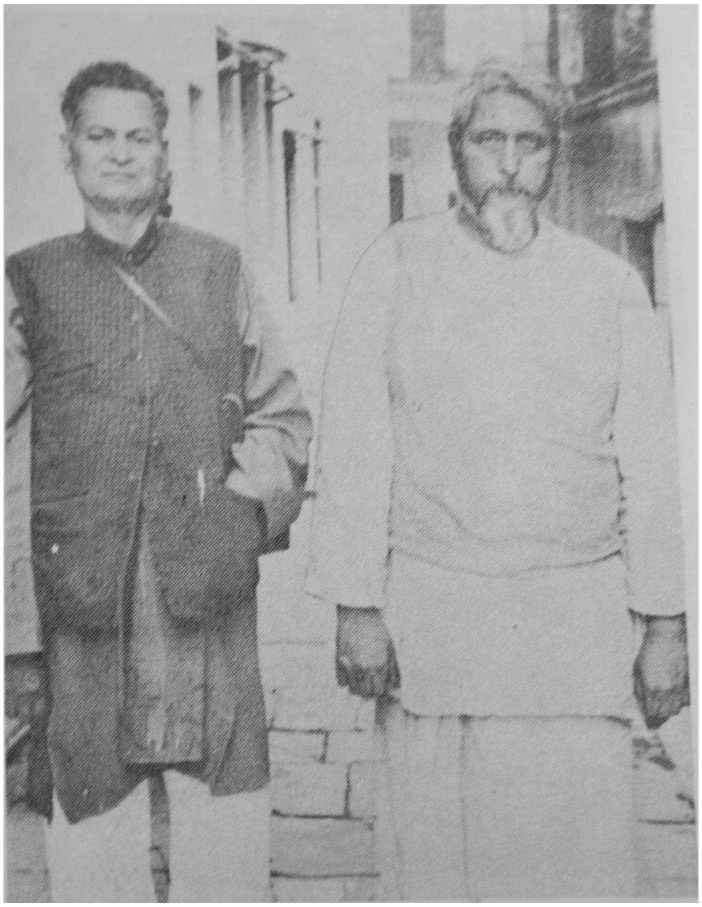

1943 में लिखी गई अपनी किताब ‘नए भारत के नए नेता’ में भी एक अध्याय राहुल ने निराला पर लिखा है। इस किताब राहुल जी ने में के.एम. अशरफ, पूरनचंद्र जोशी, सज्जाद ज़हीर, ज़ेड ए. अहमद, सहजानन्द सरस्वती, कल्पना दत्त, श्रीपाद अमृत डांगे, शेख़ अब्दुल्ला आदि की जीवनियाँ लिखी थीं। निराला के विषय में राहुल लिखते लिखते हैं : ‘निराला का व्यक्तित्व बिलकुल निराला है। उसे न सड़ा समाज ही अपने बंधन में बांध सकता है, न प्रभुता और धन में मत्त प्रभुवर्ग ही। वह किसी के अभिमान को बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह स्वभावतः सहिष्णु है, मगर जिस संदेश को

नवीन समाज के लिए ज़रूरी समझता है, उसे डंके की चोट से सरे बाज़ार घोषित करता है। तरुण हृदय और मस्तिष्क उसका स्वागत करते हैं, देह और दिमाग के बूढ़े झल्लाते हैं और वाग्बाण प्रहार करते हैं।'

कहना न होगा कि निराला ने अपनी कविता 'सच है' में ये पंक्तियाँ राहुलजी जैसे साहित्यकारों के लिए ही लिखी होंगी :

यह सच है / तुमने जो दिया दान – दान वह,

हिन्दी के हित का अभिमान वह, / जनता का जन-ताका ज्ञान वह,

सच्चा कल्याण वह अथच है / यह सच है।

राहुल सांकृत्यायन और प्रेमचंद

मई 1933 में ‘हंस’ में लिखे एक संपादकीय में प्रेमचंद ने राहुल सांकृत्यायन की तिब्बत यात्राओं का विवरण दिया था और उनके साहस और जीवट की सराहना की थी। राहुलजी की प्रतिभा, उनके परिश्रम व अध्यवसाय की चर्चा करते हुए प्रेमचंद ने लिखा कि ‘राहुल जी कदाचित वह पहले भारतीय बौद्ध संन्यासी हैं, जिन्होंने तीन वर्ष तिब्बत में रहकर पालि का ज्ञान प्राप्त किया और वहाँ से बौद्ध साहित्य की लगभग दस हजार प्राचीन पुस्तकें लेकर भारत लौटे। आपने वह सब पुस्तक पटना म्यूजियम को भेंट कर दी।’

इस संपादकीय लेख में प्रेमचंद ने राहुल सांकृत्यायन के आरंभिक जीवन, उनकी शिक्षा-दीक्षा, बौद्ध धर्म से उनके जुड़ाव, अनागरिक धर्मपाल से उनके संपर्क का परिचय तो दिया ही। साथ ही, संस्कृत, पालि, अंग्रेज़ी, बांग्ला, फ्रेंच आदि भाषाओं पर उनके अधिकार की भी चर्चा की। राहुल जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के बारे में प्रेमचंद की टिप्पणी है – आप ऊंचे डील के, बलिष्ठ, तेजस्वी, सौम्य पुरुष हैं, बड़े ही मिलनसार और विनोदशील।

तिब्बत यात्रा की कठिनाइयों और राहुल द्वारा उनसे निजात पाने के संदर्भ में प्रेमचंद ने लिखा कि ‘तिब्बत में बाहर वालों का कितना बहिष्कार किया जाता है, यह सभी जानते हैं, पर राहुल जी ने तिब्बती भाषा पर ऐसा अधिकार कर लिया है कि आप तिब्बत के ही समझे जाने लगे और फिर तो आपकी हरेक संग्रहालय, हरेक विहार में रसाई हो गई।’

राहुल जी के कृतित्व की चर्चा करते हुए प्रेमचंद ने राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखी गई भगवान बुद्ध की प्रामाणिक जीवनी ‘बुद्धचर्या’ का भी ज़िक्र किया, जिसे नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सम्मानित किया गया था। साथ ही, प्रेमचंद ने राहुल जी द्वारा संपादित ‘गंगा’ के पुरातत्त्वांक की भी सराहना की। प्रेमचंद ने ‘हंस’ के पाठकों को यह जानकारी भी दी कि राहुल तिब्बत की अपनी दूसरी यात्रा की योजना बना रहे हैं, जिसमें वे लद्दाख, काशगर जैसे जगहों की यात्रा करते हुए बौद्ध धर्म व दर्शन से जुड़े ऐतिहासिक ग्रन्थों की खोज करेंगे। इस प्रस्तावित यात्रा के लिए राहुल जी को अपनी शुभकामना प्रेषित करते हुए प्रेमचंद ने लिखा कि ‘हमारी हार्दिक कामना है कि आपकी यह नई

यात्रा सफल हो और आप अपना यात्रा वृत्तान्त लिखकर हमारे युवकों के सामने साहसिकता और लगन का आदर्श सामने रखें।’

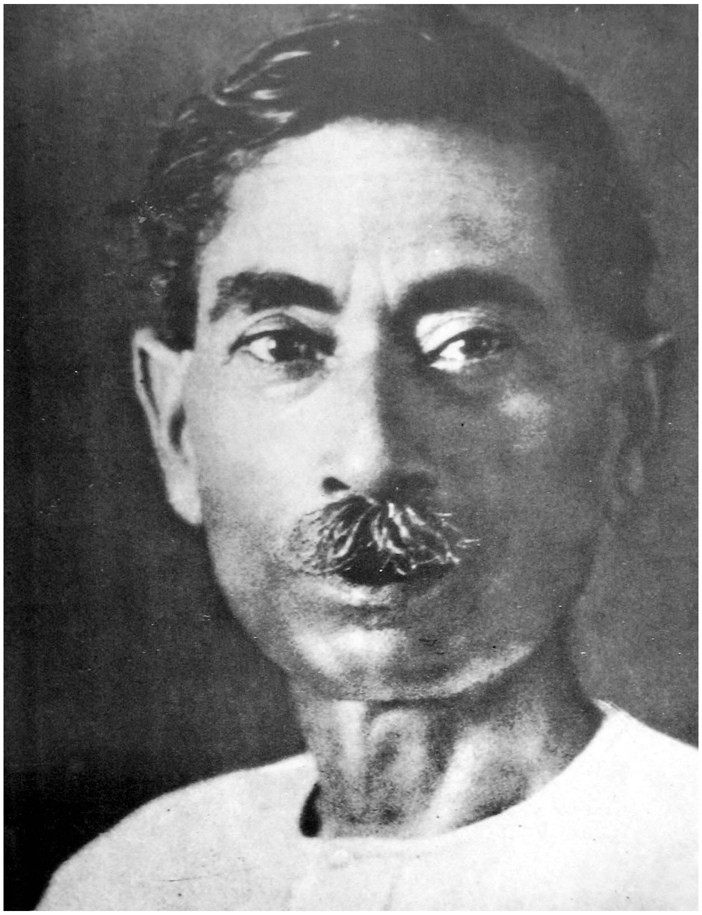

अपने एक लेख ‘प्रेमचंद-स्मृति’ में राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि वर्ष 1915 के आस-पास कानपुर से छपने वाले पत्र ‘ज़माना’ को पढ़ते हुए प्रेमचंद की रचनाओं से परिचित हुए। राहुल जी के अनुसार ‘प्रेमचंद बहुजनहित के पक्षपाती थे और बहुजनहिताय लिखते थे।’ वर्ष 1921 में असहयोग आंदोलन के दौरान छपरा में काम करते हुए राहुल सांकृत्यायन ने रेवतिया जैसे छपरा के गाँवों में भी प्रेमचंद की रचनाओं को पढ़े जाते देखा। राहुल जी का मानना था कि बीसवीं सदी के दूसरे-तीसरे दशक में प्रेमचंद ने अपनी कृतियों से राष्ट्रीयता, राजनीतिक जागृति और उच्च आदर्शों के प्रसार में जितना काम किया, उतना शायद ही किसी अन्य लेखक ने किया हो। बाद में, बनारस में ही प्रेमचंद और राहुल की कई मुलाकातें हुईं। जिनमें से कुछ तो प्रेमचंद के गाँव लमही में भी हुई थी। प्रेमचंद की सहज भाषा और उनके विचारों की गहराई के राहुल मुरीद थे। वर्ष 1931 में राहुल जी और आचार्य नरेंद्र देव ने कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो का अनुवाद किया था, जो प्रेमचंद के ‘सरस्वती प्रेस’ से ही छपा था।

राहुलजी लिखते हैं कि 'प्रेमचंद भारत के अमर लेखक, अमर कलाकार हैं। उन्होंने साहित्यिक मनोरंजन और उच्चादर्श के लिए अंतःप्रेरणा का ही सफल प्रयास नहीं किया। बल्कि उनकी लेखनी द्वारा बीसवीं शताब्दी की साढ़े तीन दशकों के लोकजीवन का स्वरूप, लोक-इतिहास बड़ी स्पष्टता और ईमानदारी के साथ चित्रित हुआ है। उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा इतिहास के संक्रांति काल के आवश्यक पत्रों को लिखकर सुरक्षित कर दिया।'

राहुल सांकृत्यायन ने मार्च 1954 में उपन्यास सम्राट प्रेमचंद की कालजयी कृति 'गोदान' को दुबारा पढ़ना शुरू किया। बरसों पहले उन्होंने यह कृति पढ़ी थी, पर अब उसकी धुंधली-सी याद ही शेष रह गई थी। 'गोदान' को पढ़कर राहुल जी ने अपनी डायरी में दर्ज किया :

> *अद्भुत लेखनी है। कितने गुण हैं? भाषा ही को ले लें, तो देखो कितना कमाल किया। जनता के मुँह से निकलने वाले शब्दों को धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं। अनावश्यक क्लिष्ट शब्दों को हटाकर देहाती शब्दों का भी प्रयोग किया है। किसान के दुखमय जीवन का इतना स्पष्ट, विस्तृत और गंभीर चित्रण किसने किया है? भारत में तो कोई ऐसा नहीं हुआ? कोई अनावश्यक पात्र नहीं – मालती और खन्ना भी नहीं। इतने नाम उपन्यास में आ जाएँ, उन्हें अंत से पहले विस्मृत या मृत न बनाया जाए, यह कोई उचित माँग नहीं है। 'गोदान' के पात्रों में सबका अपना-अपना अलग-अलग व्यक्तित्व है।*

राहुल सांकृत्यायन और नेहरू

जवाहरलाल नेहरू के साथ महापंडित राहुल सांकृत्यायन की एक तस्वीर है वर्ष 1958 की, जब राहुल जी को उनकी कालजयी कृति 'मध्य एशिया का इतिहास' के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। राहुल और नेहरू दोनों खुलकर मुस्करा रहे हैं, इस तस्वीर में। जो बात ध्यान खींचती है, वह है पुरस्कार लेते हुए राहुलजी की तनी हुई मुद्रा, जो उनके स्वाभिमानी स्वभाव के अनुरूप ही है। ख़ुद भी यायावरी में बेहद दिलचस्पी रखने वाले नेहरू इस घुमक्कड़ महारथी की यात्राओं के मुरीद थे और उनकी यात्राओं के संबंध में बराबर उनसे जानकारी लेते थे। जिनका ज़िक्र राहुल जी ने अपनी आत्मकथा में भी किया है।

जनवरी 1934 में जब बिहार में भयानक भूकंप आया, उस समय भूकंप-पीड़ित क्षेत्र में राहत पहुंचाने के लिए पटना से जो पहला दल गंगा-पार हुआ, उसमें भी राहुल और जवाहरलाल नेहरू साथ ही थे। उस संकट की घड़ी में राहुल जी ने मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी, चम्पारन और सारन के भूकंप प्रभावित इलाकों में मदद पहुंचाने में हरसंभव योगदान दिया था।

जवाहरलाल नेहरू और राहुल सांकृत्यायन ने कई गोष्ठियों में भी एक साथ सहभागिता की थी। सारनाथ में भगवान बुद्ध की जयंती पर हुए एक समारोह का विवरण तो ख़ुद राहुल सांकृत्यायन ने अपनी आत्मकथा 'मेरी जीवन-यात्रा' में दिया है, जिसमें नेहरू ने भी भाग लिया था और जिसकी अध्यक्षता स्वयं राहुल जी ने की थी। एक ऐसी ही गोष्ठी सितंबर 1937 में इलाहाबाद में हुई थी, जिसका विवरण गुणाकर मुले ने अपनी पुस्तक 'महापंडित राहुल' में दिया है।

हुआ यूँ था कि 6 सितंबर 1937 को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्रों के समक्ष राहुल जी का भाषण रखा गया था। जिसका शीर्षक था – 'हमारी कमजोरियाँ'। इस गोष्ठी के सभापति स्वयं जवाहरलाल नेहरू थे। उस समय तक राहुल जी तीन तिब्बत यात्राएं कर चुके थे और इन साहसिक यात्राओं में उन्होंने विलुप्त हो चले अनेक बौद्ध ग्रन्थों का पुनरुद्धार भी किया था। उनकी इन्हीं यात्राओं का नतीजा था कि प्रमाणवार्तिक, प्रज्ञापारमिता (अष्टसाहस्रीका), मध्यांतविभंगकारिका, प्रातिमोक्षसूत्र, वादन्याय, वादरहस्य सरीखे कितने ही विलुप्त हो चुके ग्रंथ सदियों बाद दुनिया भर के सामने आए। इतना ही नहीं तब तक वे जापान, कोरिया, मंचूरिया, सोवियत संघ, ईरान, यूरोप की यात्रा भी कर चुके थे।

राहुल जी ने अपने उस भाषण में उन लोगों को जमकर लताड़ा जो वर्तमान से नजरें चुराकर अतीत का थोथा महिमामंडन करते थे और सारा ज्ञान-विज्ञान पुरानी पोथियों में ही खोजा करते

थे। राहुल जी का भाषण समाप्त होने पर सभापति के हैसियत से नेहरू ने अपनी बात रखते हुए कहा : आज मैं दो बातें सोच रहा हूँ। पहली, राहुलजी की तरह के चिंतक हमारे विश्वविद्यालयों में क्यों नहीं पैदा होते? दूसरी, मेरे जैसा आदमी यह सब कहता तो आप कहते कि तुम क्या जानते हो पुरानी किताबों की बातें। मगर आज तो ऐसा आदमी यह सब कह रहा है, जो पुरानी किताबों में ही तैरता रहा है।

यह सुनकर वहाँ मौजूद एक विद्यार्थी ने टिप्पणी की : 'तैरते ही रहे हैं, पार नहीं पाया है!'

हाजिरजवाब नेहरू ने तुरंत उत्तर दिया – हाँ, जो लोग कुओं में तैरते हैं, वे मेंढकों की तरह इस पार से उस पार भी चले जाते हैं। मगर जो सागर में तैरते हैं, वे तैरते ही रहते हैं, वे आर-पार नहीं जाते।

राहुल सांकृत्यायन और पंडित रामावतार शर्मा

अपने विद्यार्थी जीवन में ही राहुल सांकृत्यायन ने बनारस में महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा को देखा था। वर्ष 1912 में जब राहुलजी बनारस के मोतीराम के बाग स्थित आश्रम में रहकर संस्कृत की पढ़ाई कर रहे थे, तभी पंडित रामावतार शर्मा अस्सी पर रहने के लिए आए। जिससे अस्सी के पंडितों ही नहीं, विद्यार्थियों में भी खलबली मच गई। राहुलजी लिखते हैं, 'सारी विद्यार्थी मंडली में और पंडित मंडली में भी समझिए तहलका मच गया, बड़ा अगाध पंडित, भारी कवि, सूक्ष्मतार्किक, महान नास्तिक रामावतार शर्मा आया है। वह वेद को नहीं मानता, वह भगवान को नहीं मानता, वह पुण्य-पाप को नहीं मानता। सैकड़ों दूसरे व्यक्तियों की भांति ही मुझे वह अजूबा-सा आदमी जान पड़ा।'

रामावतार शर्मा की वेश-भूषा और पहले दर्शन का वर्णन करते हुए राहुलजी ने 'मेरी जीवन-यात्रा' में लिखा है 'पहली बार मुझे उनके दर्शन हुए, जगन्नाथ मंदिर के बाहर वाले फाटक के सामने। एक धोती पहने हुए थे, एक धोती और शायद अंगोछा भी हाथ में था। एक कंधे पर दो-तीन वर्ष की एक लड़की बैठी थी, जिसे संभालने के लिए दूसरा हाथ उठा हुआ था। पाँच-सात आदमी – जिनमें तरुण विद्यार्थी ही अधिक थे – घेरे हुए थे। व्याकरण या न्याय पर शास्त्रार्थ नहीं हो रहा था, बल्कि बात हो रही थी किसी पौराणिक गप या ऋषि के असंभव चमत्कार पर।'

वर्ष 1877 में बिहार में पैदा हुए पंडित रामावतार शर्मा ने बनारस स्थित क्वींस कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय और कलकत्ता विश्वविद्यालय से संस्कृत की पढ़ाई की। साथ ही, उन्होंने वाराणसी स्थित सेंट्रल हिन्दू कॉलेज, पटना कॉलेज, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी और कलकत्ता विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य भी किया। वे जबलपुर में वर्ष 1916 में आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के सभापति भी रहे। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं : प्रकीर्णप्रबंधाः, वांग्मयार्णवः, परमार्थदर्शनं, यूरोपीय दर्शन, हिंदी व्याकरणसार, सदुक्तिकर्णामृतं (संपा.)।

जब राहुलजी बिहार में राजनीतिक आंदोलन में सक्रिय हुए, तब भी उनकी मुलाक़ात रामावतार शर्मा से बराबर होती रहती थी। रामावतार शर्मा राहुलजी से राजनीति को छोड़ अनुसंधान पर अधिक ध्यान के लिए बारंबार कहा करते थे। जब राहुलजी अनुसंधान कार्य के लिए अपनी पहली तिब्बत यात्रा पर गए हुए थे, उसी समय अप्रैल 1929 में रामावतार शर्मा का निधन हो गया। उनकी प्रतिभा और विद्वत्ता के बारे में राहुलजी ने लिखा है कि 'पंडित रामावतार शर्मा में अप्रतिम प्रतिभा थी, लेकिन उनका मन कभी स्थिर होकर एक काम में नहीं लग सकता था; नहीं तो न जाने उन्होंने कितने ग्रंथ रचे होते।'

जुलाई 1937 में राहुलजी पंडित रामावतार शर्मा के घर गए। जहाँ उन्होंने उनके अप्रकाशित ग्रंथ 'संस्कृतकोश' को देखा। इस ग्रंथ के बारे राहुलजी ने अपनी राय इन शब्दों में दी है, 'कोष को देखा, 301 पृष्ठों में प्रायः 6 हजार श्लोकों में अकारादि क्रम से उन्होंने इस कोष को बद्ध किया। श्लोक में आए शब्दों का विस्तार उन्होंने कई जिल्दों में लिखा था। यही एक ग्रंथ है, जिसके श्लोक भाग को उन्होंने समाप्त किया था, लेकिन वह अब भी अप्रकाशित है।' राहुलजी ने 'संस्कृतकोश' मुखबन्ध के श्लोक को अपनी आत्मकथा में उद्धृत किया, जो इस प्रकार है :

श्रीदेवनारायणशर्मण श्रीगोविन्ददेव्याश्च महामहिम्नोः,

प्रणम्य पित्रोश्चरणाम्बुजाते आचार्य गंगाधरशास्त्रिणश्च।

रामेण सारंगभवीद् भवेन काश्यां यदारम्भिमहाभिधानं,

समापतिं तत् किल विश्वविद्यासर्वस्वमेतत् कुसुमाख्यपुर्यां।।

राहुलजी पंडित रामावतार शर्मा की इन कृतियों के प्रकाशन को लेकर चिंतित रहे। आगे चलकर वे पंडित रामावतार शर्मा के सुयोग्य बेटे नलिनविलोचन शर्मा के संपर्क में भी आए। नलिनविलोचन शर्मा को राहुलजी ने बनारस में पहली बार तब देखा था, जब नलिन जी की आयु केवल दो-तीन वर्ष की थी और वे अपने पिता के कंधे पर बैठकर गंगा-स्नान के लिए जाया करते थे। राहुलजी लिखते हैं कि 'उनसे भी ज्यादा मैं सोचा करता था कि अपने काल के अद्‌भुत विद्वान पंडित रामावतार शर्मा की संस्कृत और हिंदी कृतियों को पुस्तकाकार कैसे छापा जाए। उनका संस्कृत कोश तो प्रकाश में बिलकुल आया ही नहीं, और डर था कि स्वदेहे जरा को प्राप्त न हो जाए।'

राहुल सांकृत्यायन और बिसराम

राहुल सांकृत्यायन आजमगढ़ के लोककवि बिसराम के बिरहों के अनन्य प्रशंसक थे। अगस्त 1947 में सोवियत रूस से अपनी तीसरी यात्रा के बाद भारत लौटने के एक महीने बाद ही राहुलजी को बिसराम की असमय मृत्यु की सूचना मिली। युवावस्था में ही बिसराम की पत्नी का निधन हो गया था। जिससे बिसराम के कोमल मन पर गहरा आघात लगा। जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अपने बिरहों में अपनी समूची पीड़ा और व्यथा को उड़ेलकर किया। बिसराम की मृत्यु की ख़बर पाकर राहुलजी ने लिखा : ‘बिसराम अब इस दुनिया में नहीं रहे। बिसराम आजमगढ़ के तरुण वियोगी लोक कवि। कभी-कभी ही ऐसे कवि पैदा होते हैं। वह अपनी मातृभाषा में कवि बनने के लिए या स्वांतःसुखाय कविता नहीं करते थे। उनकी कविता सुख के लिए नहीं दुख के लिए होती थी। वह दुनिया की किसी चीज को देखते ही अपनी प्रियतमा की याद करते थे। अपने सीधे-सादे बिरहों को जोड़कर स्वयं गुनगुनाया करते थे।’ धीरे-धीरे बिसराम के ये बिरहे आम लोगों तक पहुँचे और अपनी सच्ची अनुभूतियों की वजह से उन्हें लोक-स्वीकृति भी मिली।

पर दुर्भाग्यवश बिसराम की रचनाओं को संगृहीत करने की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। परमेश्वरी लाल गुप्त ने बिसराम के बीस के करीब बिरहे ज़रूर संग्रह किए, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि बिसराम की असमय मृत्यु ने भोजपुरी समाज को एक महान प्रतिभा से वंचित कर दिया। राहुलजी के अनुसार ‘बिसराम के बिरहे बतला रहे थे कि जो बड़वा उनके हृदय में धाँय-धाँय जल रही है, उसके कारण वह देर तक नहीं रह सकेंगे।’

वर्ष 1944 में सोवियत रूस में ‘दोम सुयूज’ के थिएटर में जब राहुलजी ने सोवियत मध्य एशिया के जन-नृत्य और जन-संगीत के कार्यक्रम देखे। तब भी उनके मन में यह टीस उठी थी कि आख़िर क्यों हम भारतीय अपने लोककवियों और लोकगीतकारों का वैसा सम्मान नहीं करते, जिसके वे अधिकारी होते हैं। उन्हें यह भी मालूम था कि ऐसा तभी संभव हो सकेगा जब सत्ता की बागडोर आम लोगों के हाथ में होगी। इसी गहरी पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए राहुलजी ने लिखा कि

सोवियत रूस में कलाकारों के सम्मान को देखकर ईर्ष्या होती थी। वह किसी वैज्ञानिक या प्रोफेसर से कम सम्मानित नहीं माने जाते थे। मुझे ख़्याल आया मेरे अपने जिले के बिसराम ने भी बिरहे बनाए थे। करुणा-रस से सराबोर जन-कविता का उसने निर्माण किया था और जवानी में ही वह वियोगी मर गया। भारत लौटने पर मालूम हुआ कि बिसराम अब दुनिया में नहीं है और उसके पंद्रह-सोलह बिरहों से अधिक उतारे नहीं जा सके हैं। सोवियत में किसी बिसराम को इस तरह विलीन होने की संभावना नहीं है।

डॉ. उदयनारायण तिवारी ने अपनी पुस्तक 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' में बिसराम के भावप्रवण बिरहों के बारे में लिखा है कि अनपढ़ होने पर भी जनकवि बिसराम ने ऐसे सरस और भावपूर्ण बिरहों की रचना की है कि उन्हें पढ़कर हृदय सहज भाव से रसप्लावित हो जाता है। बिसराम द्वारा रचा गया एक ऐसा ही बिरहा यहाँ प्रस्तुत है, जिसे उन्होंने अपनी पत्नी की मृत्यु के ठीक बाद लिखा था :

आज मोरी घरनी निकरली मोरे घर से, / मोरा फाटि गइले आल्हर करेज।

'राम नाम सत' ही सुनि मैं गइलों बउराई, / कवन रछसवा गइलें रानी के हो खाई,

सुखि गइलें आँसू नाहीं खुलेले जबनियाँ, / कहस के निकारों मैं त दुखिया बचनियाँ।

राहुल सांकृत्यायन और रूसी विद्वान बरान्निकोव

डॉ. अलेक्सेई पेत्रोविच बरान्निकोव सोवियत रूस के उन अग्रणी विद्वानों में से थे, जिन्होंने आधुनिक भारतीय भाषाओं का गहन अध्ययन करते हुए भारतविद्या (इंडोलॉजी) को समृद्ध करने का काम किया। डॉ. बरान्निकोव उक्रेन के एक गरीब बढ़ई परिवार में पैदा हुए, लेकिन अध्ययन और परिश्रम के बलबूते वे सोवियत रूस के प्रसिद्ध विद्वानों में से एक बने। बरान्निकोव ने हिंदी के कालजयी ग्रन्थों का रूसी भाषा में अनुवाद किया। मसलन, उन्होंने लल्लू लाल कृत 'प्रेमसागर' का गद्यानुवाद और तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' का रूसी में पद्यानुवाद किया। ये दोनों ग्रंथ क्रमशः वर्ष 1937 और 1948 में प्रकाशित हुए। उन्होंने हिंदी-रूसी तथा उर्दू-रूसी शब्दकोशों का भी सम्पादन किया। उन्होंने ही पहले-पहल प्रेमचंद की कहानी 'सौत' का उक्रेनी भाषा में अनुवाद किया और आगे चलकर उन्होंने प्रेमचंद के कहानी-संग्रह 'सप्त सरोज' का भी अनुवाद किया।

राहुलजी ने बरान्निकोव के बारे में लिखा है - वे बहुत कम बोलने वाले विद्वान हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं कि वह अपने विषय पर भाषण देने या लिखने में अक्षम हैं। राहुलजी के अनुसार, 'डॉ. बरान्निकोव संस्कृत और भारतीय भाषाओं के ही पंडित नहीं हैं, बल्कि रोमनी (सिगान) भाषा का भी उन्होंने विशेषतौर से अध्ययन किया है।' राहुल सांकृत्यायन ने डॉ. बरान्निकोव की पुस्तकें पढ़ी थीं तथा रूस यात्रा के दौरान उनसे मुलाकात होने पर रोमनियों के उद्गम के बारे में भी उनसे बातचीत की। राहुलजी रोमनी समुदाय के भारत से संबंधों की ऐतिहासिकता को समझने में गहरी दिलचस्पी रखते थे। इसीलिए रोमनी समुदाय की भाषा, संस्कृति, कला-संगीत के बारे में उन्होंने डॉ. बरान्निकोव से कई बार गंभीर चर्चा की थी।

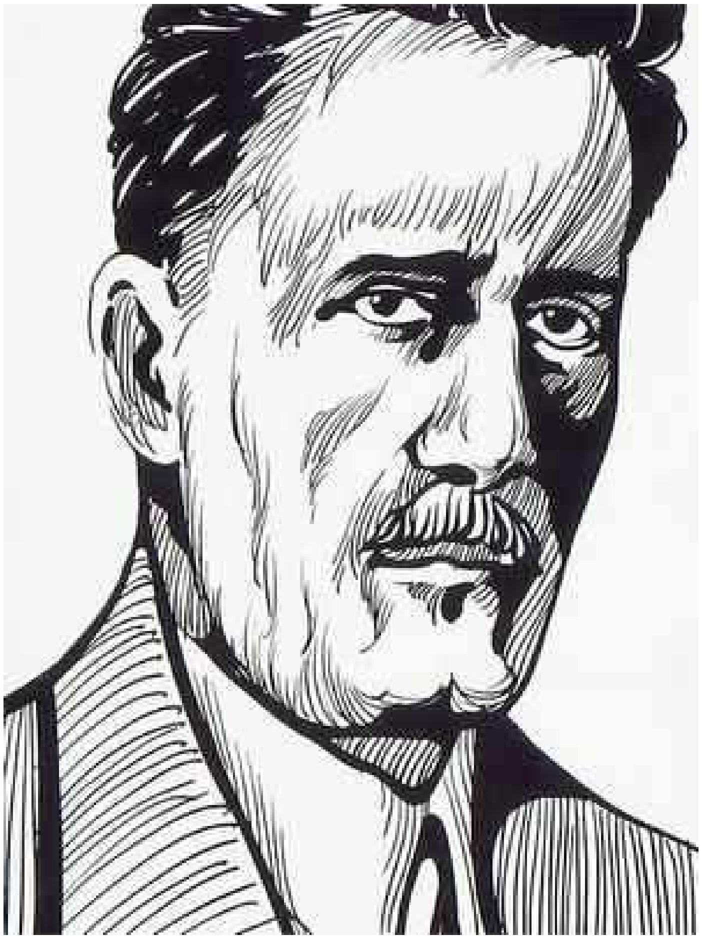

डॉ. बरान्निकोव द्वारा ‘रामचरितमानस’ का रूसी में किया गया पद्यानुवाद सोवियत अकादमी द्वारा प्रकाशित किया गया। उनके इस महती कार्य की प्रशंसा करते हुए राहुलजी ने लिखा कि ‘मेरे भारत आ जाने पर उनका पद्यानुवाद छपा और साल ही भर के भीतर बिक भी गया, जिससे मालूम होता है कि विद्वान और साधारण पाठक दोनों ने बरान्निकोव के अनुवाद को पसंद किया।’ पुस्तक को सचित्र बनाने, उसके आवरण और प्रकाशन के संबंध में भी बरान्निकोव ने राहुल सांकृत्यायन से परामर्श लिया था। इतना ही नहीं उन्होंने तुलसी काव्य की उत्कृष्टता पर बोलने के लिए राहुलजी को रेडियो पर भी आमंत्रित किया। रेडियो पर इस चर्चा के अनुभव के विषय में राहुलजी ने लिखा है कि ‘मुझे बरान्निकोव ने मूल चौपाइयों को दोहरा देने के लिए कहा। 28 फरवरी 1947 को हम दोनों रेडियो-कार्यालय में गए। मैंने साधारण लय में मूल को पढ़ा और बरान्निकोव ने अपनी भूमिका के बाद उसका पद्यानुवाद रूसी में पढ़ा।’

प्रसिद्ध आलोचक रामविलास शर्मा ने डॉ. बरान्निकोव के विषय में लिखा है कि ‘बरान्निकोव वैज्ञानिक थे, जिन्होंने कवि-हृदय पाया था। उन्हें भारत से अगाध प्रेम था। समाजवादी क्रांति से लेकर भारत के स्वाधीन होने और दोनों देशों में नए पैमाने पर मैत्री-संबंध स्थापित होने तक उन्होंने भारतीय भाषाओं और साहित्य के क्षेत्र में अनवरत परिश्रम किया।’ आगे चलकर सोवियत

साइंस अकादमी ने पाँच खंडों में डॉ. बरान्निकोव की ग्रंथावली का प्रकाशन किया। डॉ. बरान्निकोव की मृत्यु के बाद उनकी विरासत और ज्ञान की समृद्ध परंपरा को आगे बढ़ाने का काम उनके बेटे प्योत्र अलेक्सेयेविच और उनके शिष्यों काल्यानोव, बेस्क्रोव्नी आदि ने किया।

राहुल सांकृत्यायन और डॉ. श्चेर्वात्स्की

अपनी सोवियत यात्रा के दौरान राहुल सांकृत्यायन जिन सोवियत विद्वानों के संपर्क में आए, उनमें प्रमुख थे - डॉ. फियोदोर श्चेर्वात्स्की (1866-1942)। आई.पी. मिनायेव और सर्गेई ओल्डेनबर्ग जैसे प्राच्यवादी विद्वानों के छात्र रहे डॉ. श्चेर्वात्स्की ने धर्मकीर्ति की महान कृति 'न्यायबिन्दु' का अनुवाद किया था। बौद्ध दर्शन और पालि ग्रन्थों के अध्ययन के लिए उन्होंने वर्ष 1910-11 के दौरान भारत-यात्रा भी की थी। बौद्ध दर्शन और तर्कशास्त्र पर उनकी चर्चित किताब 'बुद्धिस्ट लॉजिक' ने बीसवीं सदी में बौद्ध दर्शन के अध्ययन को एक नई दिशा दी थी। नवंबर 1937 में डॉ. श्चेर्वात्स्की से राहुल की पहली मुलाक़ात लेनिनग्राद में हुई थी। उस भेंट के बारे में राहुल जी ने लिखा है कि 'पहले ही दिन मिलते हुए उन्होंने कहा था – स्वागतं इदमासनं उपविश्यतां। अब भी वे शब्द मेरे कानों में गूँज रहे थे।' उस समय डॉ. श्चेर्वात्स्की पैर में चोट आ जाने के कारण बिस्तर पर पड़े हुए थे। फिर भी उन्हें राहुल जी से मिलकर गहरी प्रसन्नता हुई और दोनों में घंटों तक बात होती रही। डॉ. श्चेर्वात्स्की ने अपने छात्र रविनोविच को भी राहुल जी के साथ कर दिया, ताकि वह उन्हें लेनिनग्राद की महत्त्वपूर्ण जगहें, लाइब्रेरी और संग्रहालय आदि दिखा सकें। लोला (एलेना नारवेर्तोव्ना कोजेरोबसकाया) भी, जिनसे आगे चलकर राहुल जी ने विवाह किया, डॉ. श्चेर्वात्स्की की छात्रा थीं और सोवियत इंस्टीट्यूट के ओरिएंटल विभाग में सचिव भी।

राहुल जी के रूस से लौटने के बाद भी डॉ. श्चेर्वात्स्की से उनका पत्राचार होता रहा। जब राहुल मार्च 1940 से जुलाई 1942 तक जेल में थे, तब भी डॉ. श्चेर्वात्स्की उन्हें पत्र लिखते रहे। वे चाहते थे कि राहुल सोवियत रूस आ जाएँ, जहाँ वे उनके साथ तिब्बती भाषा का व्याकरण और तिब्बती-रूसी कोश तैयार करना चाहते थे। डॉ. श्चेर्वात्स्की अपने पत्रों में लोला और राहुल जी के बेटे ईगर के भी समाचार लिखते थे। राहुल जी की किताब 'सोवियत भूमि' के प्रकाशित होने पर डॉ. श्चेर्वात्स्की ने उसे पढ़कर राहुल जी को लिखा कि 'मेरे प्रिय राहुल, आखिर मैंने तुम्हारी किताब 'सोवियत भूमि' देखी। मुझे बड़ी खुशी हुई। मैंने निहायत दिलचस्पी से उसे पढ़ा। तुम्हारी किताब बहुत योग्यता के साथ लिखी गई है। बहुत अच्छा होगा, यदि इसका रूसी में अनुवाद कर दिया जाए।'

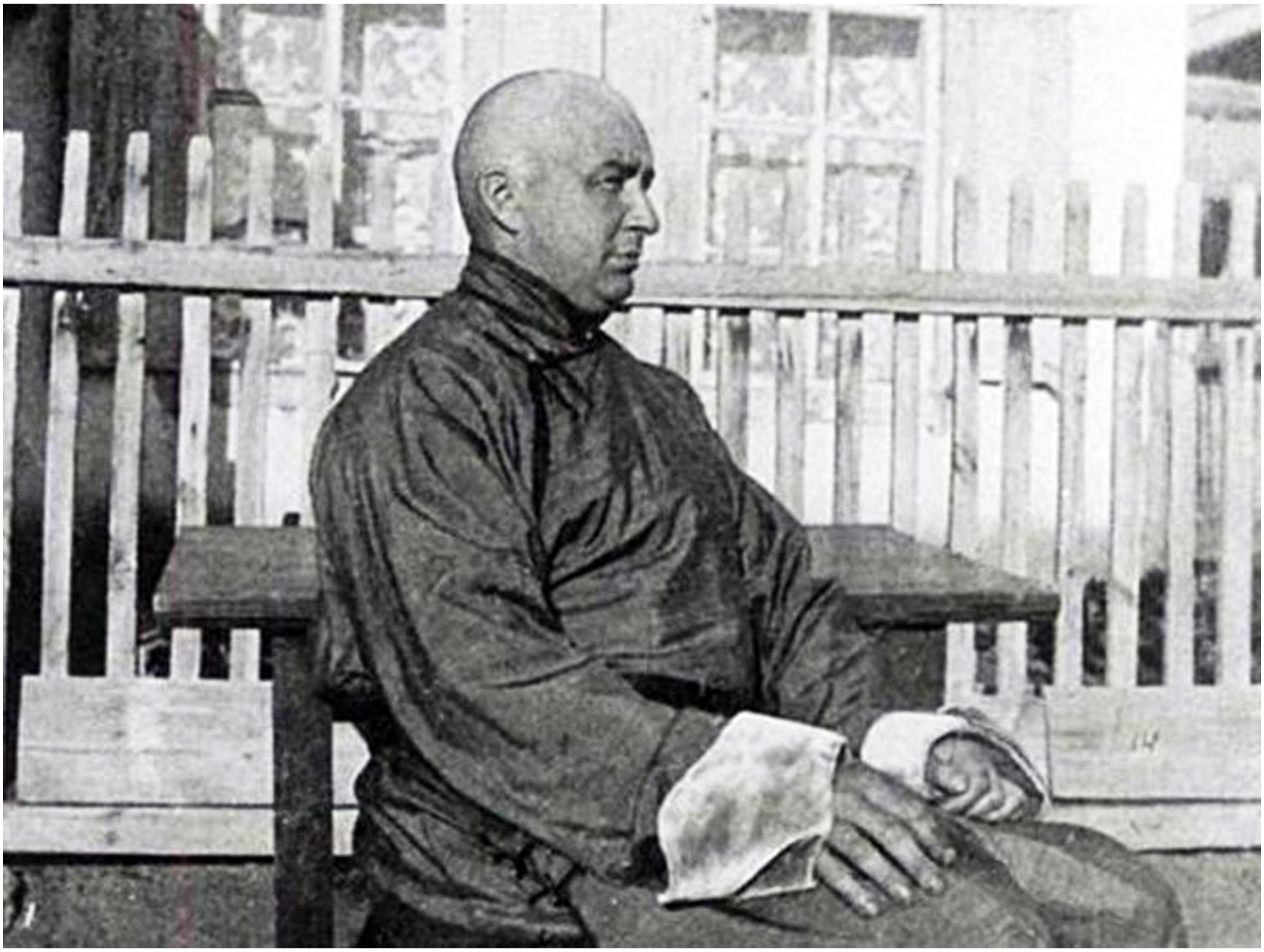

18 मार्च, 1942 को डॉ. श्चेर्वात्स्की का निधन हो गया। किन्तु जेल में बंद होने के कारण राहुल जी को डॉ. श्चेर्वात्स्की के निधन का समाचार नवंबर 1942 में मिला। राहुल जी के लिए यह एक निजी क्षति थी। क्योंकि वे डॉ. श्चेर्वात्स्की के साथ अनुसंधान कार्य तो करना ही चाहते थे, साथ ही कुछ ही समय में उनका डॉ. श्चेर्वात्स्की के साथ आत्मीय और घनिष्ठ संबंध बन चुका था। राहुल जी से मिलने से पूर्व भी डॉ. श्चेर्वात्स्की उनके ऐसे अदृष्ट मित्र की तरह थे, जो उनकी तिब्बत यात्राओं और बौद्ध दर्शन संबंधी उनके अनुसंधान में गहरी दिलचस्पी रखता था। राहुल जी जब लंका गए हुए थे, तब जर्मन विद्वान प्रो. ल्यूर्ड्स से उनसे कहा था कि यूरोप में पूर्वीय दर्शन के सबसे बड़े पंडित डॉ. श्चेर्वात्स्की हैं। डॉ. श्चेर्वात्स्की अपने अंतिम दिनों में योगाचार-दर्शन की एक किताब पर भी काम कर रहे थे, साथ ही वे धर्मकीर्ति के ‘प्रमाणवार्तिक’ का भी अनुवाद करना चाहते थे। राहुल जी का मानना था कि वे धर्मकीर्ति के इस महान ग्रंथ का अनुवाद करने के लिए सर्वाधिक योग्य व्यक्ति थे। राहुल जी के अनुसार, ‘भारतीय दर्शन और संस्कृत भाषा का इतना बड़ा विद्वान आज तक यूरोप में नहीं हुआ। आधे दर्जन के करीब उन्होंने भारतीय दर्शन – विशेषकर बौद्ध दर्शन – पर फ्रेंच,

अंग्रेज़ी और रूसी में ग्रंथ लिखे हैं। वह पश्चिमी दर्शन के भी पंडित थे, इसीलिए दर्शन पर अधिकार के साथ लिख सकते थे।'

बौद्ध दर्शन के अध्येता : राहुल सांकृत्यायन और जॉर्ज रोयरिक

महापंडित राहुल सांकृत्यायन की जीवन-यात्रा के महत्त्वपूर्ण पड़ावों में जितनी उल्लेखनीय हैं उनकी सोवियत यात्राएँ। उनकी विचार-यात्रा के संदर्भ में उतना ही महत्त्वपूर्ण है सोवियत विद्वानों से उनका निकट सम्पर्क। 1935 से 1947 के दौरान हुई अपनी तीन सोवियत यात्राओं में जहाँ एक ओर राहुल सांकृत्यायन, फियोदोर श्चेरवात्स्की और ए.पी. बरान्निकोव सरीखे विद्वानों के सम्पर्क में आए। वहीं बौद्ध दर्शन, तिब्बती संस्कृति व इतिहास में राहुल की उत्कट रुचि उन्हें तब भारत में ही रह रहे महान रूसी चित्रकार व विद्वान निकोलाइ रोयरिक व उनके योग्य पुत्र जॉर्ज रोयरिक के निकट ले गई।

राहुलजी ने अपनी आत्मकथा 'मेरी जीवन-यात्रा' में वर्ष 1949 में कलिम्पोंग प्रवास के दौरान बौद्ध दर्शन के अधिकारी विद्वान जॉर्ज रोयरिक (1902-1960) से हुई मुलाक़ातों का ब्यौरा दिया है। इसी दौरान इन दोनों ने 'प्रमाणवार्तिक' का अँग्रेजी अनुवाद करना भी आरंभ किया। 19 जून 1949 को जॉर्ज रोयरिक से हुई मुलाक़ात का उल्लेख राहुल जी ने इन शब्दों में किया है : '19 जून को सवेरे डॉ. रोयरिक के पास गया। हम दोनों एक ही मर्ज के मरीज थे। तिब्बत के संबंध में हमारी न तृप्त होने वाली जिज्ञासा थी, और उसी के लिए काम करना चाहते थे। डॉ. रोयरिक से तय हुआ कि धर्मकीर्ति के महान ग्रंथ 'प्रमाणवार्तिक' का अँग्रेजी में अनुवाद किया जाए।' बाद में, राहुलजी ने जॉर्ज रोयरिक के अनुज और प्रसिद्ध चित्रकार स्वेतलाव रोयरिक और उनकी पत्नी मशहूर अभिनेत्री देविका रानी से भेंट का भी विवरण अपनी आत्मकथा में दिया है।

उल्लेखनीय है कि जॉर्ज रोयरिक अपने पिता निकोलाइ रोयरिक (1874-1947) के साथ पहले-पहल 1923 में भारत आए थे। उसी दौरान रोयरिक परिवार ने मध्य एशिया का अन्वेषी अभियान भी चलाया था, जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन जॉर्ज रोयरिक ने 1931 में छपी किताब 'ट्रेल्स टू इनमोस्ट एशिया' में किया है। इस सफल अभियान के बाद रोयरिक परिवार ने हिमालयन रिसर्च इंस्टीट्यूट की भी स्थापना की थी। इतिहास, भाषाशास्त्र और सैन्य विज्ञान में एकसमान दिलचस्पी

रखने वाले जॉर्ज रोयरिक ने कम उम्र में ही बी. तोरायेव और ए. रोदनेव सरीखे विद्वानों से क्रमशः मिस्र और मंगोल इतिहास की बारीकियाँ जानी थीं। लंदन, हावर्ड और पेरिस यूनिवर्सिटी से पढ़ाई करने वाले प्राच्यविद जॉर्ज रोयरिक पालि और चीनी भाषा के साथ-साथ भारतीय भाषाशास्त्र के भी गंभीर अध्येता रहे।

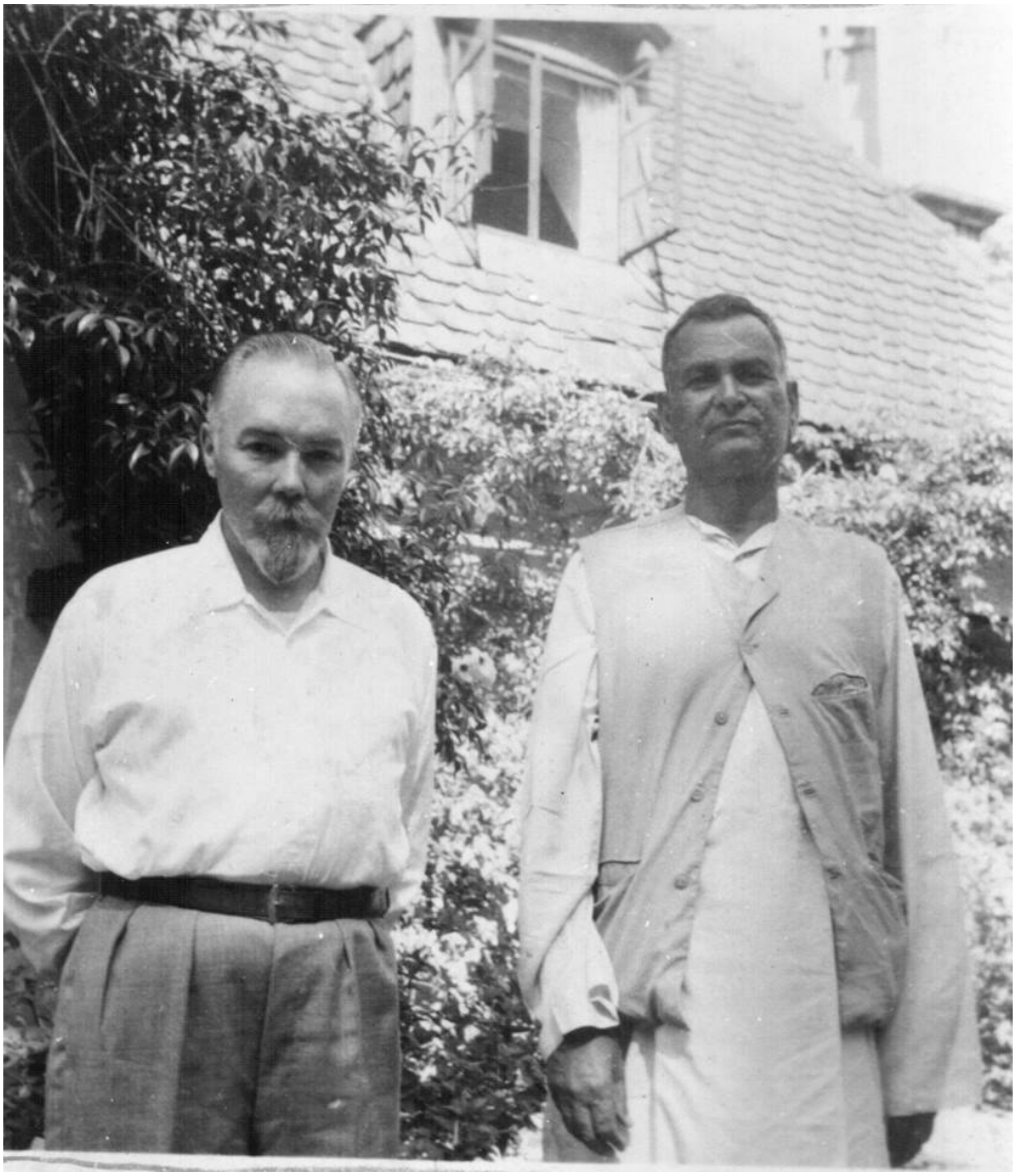

मध्य एशिया और मंगोल समाज में जॉर्ज रोयरिक की गहरी दिलचस्पी भी उन्हें राहुल सांकृत्यायन के निकट लाती थी। गौरतलब है कि अपनी अंतिम सोवियत यात्रा के दौरान राहुलजी ने मध्य एशिया के इतिहास संबंधी प्रचुर सामग्री इकट्ठा की थी। जो आगे चलकर दो खंडों में छपी उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'मध्य एशिया का इतिहास' का आधार बनी। जॉर्ज रोयरिक ने भी 1934-35 के दौरान मंगोलिया और मंचूरिया की यात्राएं की थीं। 1957 में जॉर्ज रोयरिक भारत से रूस वापस लौटे और वहाँ उन्होंने बौद्ध दर्शन से जुड़ी ग्रंथमाला 'बिब्लिओथेका बौद्धिका' का पुनर्प्रकाशन

शुरू किया। जिसकी शुरुआत एस. ओलडेनबर्ग ने 1897 में की थी। जॉर्ज रोयरिक के सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यों में से एक है, ऐतिहासिक तिब्बती ग्रंथ ‘देब-थेर स्योन-पो’ का ‘द ब्लू अनाल्स’ शीर्षक से किया गया उनका अँग्रेजी अनुवाद।

राहुल सांकृत्यायन और परमेश्वरी लाल गुप्त

अक्तूबर 1954 में राहुल सांकृत्यायन बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी स्थित संग्रहालय ‘भारत कला भवन’ देखने गए। आजमगढ़ के ही रहने वाले कलाविद और इतिहासकार परमेश्वरीलाल गुप्त तब कला भवन के क्यूरेटर थे। राहुलजी संग्रहालय की मूर्तियों, चित्रों और मुद्राओं को को देखने के लिए विशेष रूप से उत्सुक थे। भारत कला भवन की स्थापना 1920 में हुई थी और इसकी स्थापना का श्रेय राय कृष्णदास को जाता है। आरंभ में इसका नाम ‘भारत कला परिषद’ था। जिसे 1929 में बदलकर भारत कला भवन रखा गया, जब कला परिषद का संग्रह काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अंतर्गत आ गया। वर्ष 1950 में भारत कला भवन का संग्रह काशी नागरी प्रचारिणी सभा से बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी को स्थानांतरित किया गया। जहाँ इसके वर्तमान भवन का शिलान्यास और उद्‌घाटन जवाहरलाल नेहरू ने किया था।

ख़ुद परमेश्वरीलाल गुप्त भी भारत के प्रसिद्ध मुद्राशास्त्रियों में से एक माने जाते हैं। उन्होंने स्कूली पढ़ाई छोड़कर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में भी सक्रिय भागीदारी की थी। उनके विषय में राहुलजी ने ‘मेरी जीवन-यात्रा’ में लिखा है कि ‘परमेश्वरीलाल जी का ध्यान पहले पत्रकारिता की तरफ गया। फिर पुरातत्त्व और प्राचीन मुद्राओं ने अपनी ओर इतना अधिक खींचा कि वह उसी के हो गए। आजमगढ़ में रहते उनके एक मन के करीब कुषाण और पुराने सिक्कों को मैं देख चुका था।’

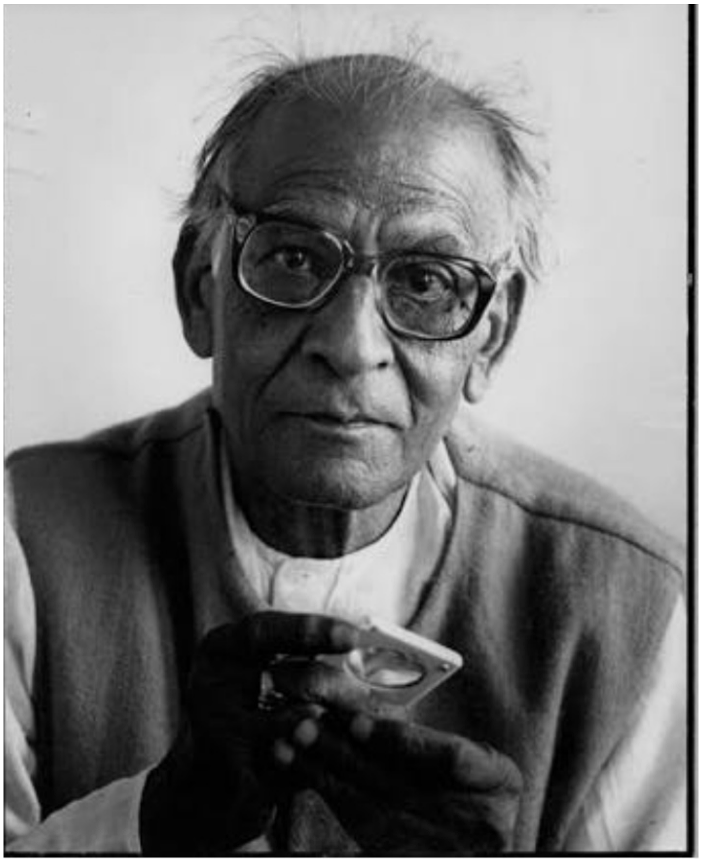

शिक्षा की औपचारिक डिग्रियाँ न होने की वजह से आरंभ में शिक्षण संस्थाओं ने परमेश्वरीलाल गुप्त की उपेक्षा की। लेकिन अपने विद्वत्तापूर्ण और शोधपरक लेखों से उन्होंने अपनी प्रतिभा का वास्तविक परिचय दिया। बाद में, उन्हें काशी से बंबई के प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूज़ियम में बुला लिया गया, जहाँ वे डॉ. मोतीचंद के साथ काम करते रहे। उन्होंने बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से डॉक्टरेट की उपाधि हासिल की और पटना संग्रहालय के क्यूरेटर भी रहे। बाद में, वे नासिक स्थित ‘इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ रिसर्च इन न्यूमिस्मेटिक स्टडीज़’ के निदेशक बने। वे लंदन स्थित रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, रॉयल न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी और न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी ऑफ इंडिया के भी मानद सदस्य थे।

अपनी पुस्तक ‘पुरातत्त्व परिचय’ की भूमिका में परमेश्वरीलाल गुप्त ने अपने पुस्तक की पांडुलिपि के प्रथम पाठकों के रूप में इतिहासकार जयचंद्र विद्यालंकार, वासुदेवशरण अग्रवाल, पुरातत्त्वविद काशीनाथ नारायण दीक्षित के साथ-साथ राहुल सांकृत्यायन का भी उल्लेख किया है। यह पुस्तक परमेश्वरीलाल जी ने जेल में रहते हुए लिखी थी। पुरातत्त्व संबंधी चिंतन के संदर्भ में बात करें तो परमेश्वरीलाल गुप्त ‘डिगिंग अप द पास्ट’ सरीखी प्रसिद्ध पुस्तक लिखने वाले ब्रिटिश पुरातत्त्वविद सर लिओनार्ड वुले और पर्सी गार्डनर के विचारों से गहरे प्रभावित थे।

इसके साथ ही परमेश्वरीलाल गुप्त ने कुतुबन कृत ‘मिरगावती’, मुल्ला दाऊद कृत ‘चंदायन’ और बिसराम के बिरहों का सम्पादन भी किया। उन्होंने कार्ल मार्क्स, बाबू शिवप्रसाद गुप्त और जमनालाल बजाज की जीवनियाँ भी लिखी थीं। उनकी अन्य पुस्तकें हैं : गुप्त साम्राज्य, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भारतीय वास्तुकला, हमारे देश के सिक्के, अग्रवाल जाति का विकास।

राहुल सांकृत्यायन और बाबा प्यारे लाल बेदी

अक्तूबर 1943 में जब राहुल सांकृत्यायन अपनी पुस्तक 'नए भारत के नए नेता' के लिए सामग्री जमा करने के सिलसिले में लाहौर में थे। उसी दौरान उनकी मुलाक़ात बी.पी.एल. बेदी और उनकी पत्नी फ्रेडा से हुई थी। बी.पी.एल. बेदी उस समय लाहौर के निकट ही मॉडल टाउन में झोपड़ी बनाकर रहा करते थे। राहुलजी ने 'मेरी जीवन-यात्रा' में लिखा है कि 'मॉडल टाउन मध्यवर्ग की नई बस्ती है। वहाँ लोगों ने नए-नए सुंदर घर बनवा लिए हैं, लेकिन बी.पी.एल. बेदी की अपनी झोपड़ी – फूस की दीवार और फूस की छत की है। जमीन तो भाई की है, जिसने अपने फकीर अनुज और अनुज वधू को झोपड़ी खड़ा कर देने की इजाजत दे रखी है।' बी.पी.एल. बेदी और फ्रेडा दोनों ने ही ऑक्सफोर्ड से पढ़ाई की थी। और उस समय लाहौर में वे अपने बेटे रंगा के साथ रहा करते थे। राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाने के चलते बी.पी.एल. बेदी को कई बार जेल भी जाना पड़ा था। बेदी राहुल सांकृत्यायन के साथ देवली कैंप में भी रहे थे, जहाँ राजनीतिक कैदियों को गिरफ्तारी में रखा गया था।

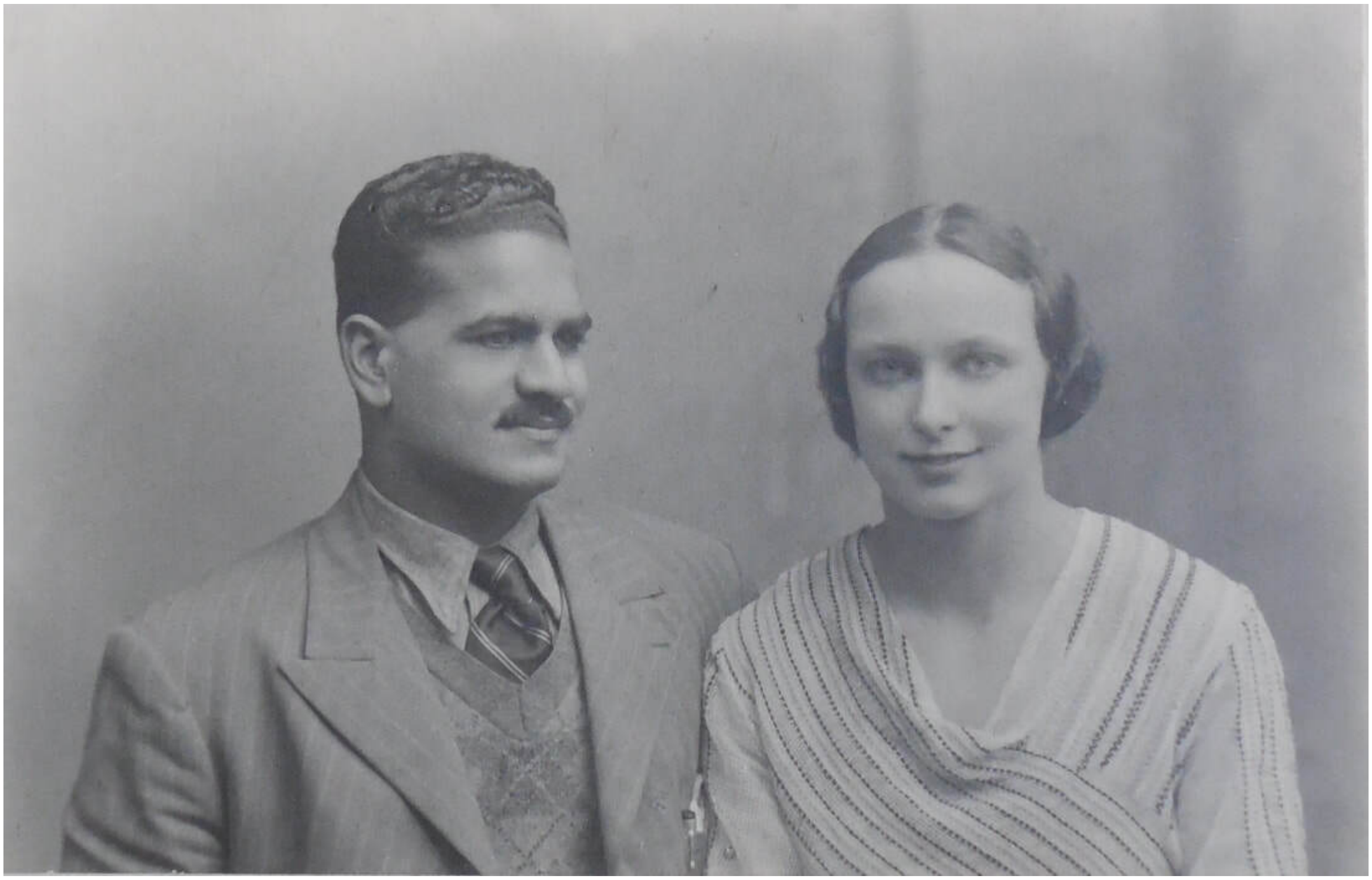

बेदी पंजाबी के बेहतरीन वक्ता थे, इसलिए राहुलजी ने उनसे अनुरोध किया कि वे पंजाबी में भी अपने रुचि के विषयों पर कुछ न कुछ लिखा करें। जिस पर बेदी ने अपनी रजामंदी दी थी। फ्रेडा के बारे में राहुलजी ने लिखा कि 'फ्रेडा सोलहों आना पंजाबिन बन गई हैं, कपड़े-पत्ते और खाने-पीने में ही नहीं; भावों और विचारों में भी। उनकी जेठानी आई.सी.एस. की बीवी शुद्ध पंजाबिन है, लेकिन सास जितना अपनी अंग्रेज़ बहू को मानती है, उतनी बड़ी बहू को नहीं।' सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेने के कारण फ्रेडा बेदी को भी गिरफ्तार होकर लाहौर जेल जाना पड़ा था। आज़ादी के बाद बी.पी.एल. बेदी और फ्रेडा दोनों कश्मीर गए, जहाँ वे शेख अब्दुल्ला के निकट सहयोगी भी रहे। वर्ष 1949 में इन दोनों ने शेख अब्दुल्ला के जीवन और उनके राजनीतिक विचारों के बारे में छोटी-सी पुस्तिका भी लिखी थी, जिसका शीर्षक था : 'शेख अब्दुल्ला - हिज़ लाइफ़ एंड आइडियल्स'।

फ्रेडा बेदी ने फ्रांसीसी दार्शनिक और इतिहासकार वाल्तेयर द्वारा अठारहवीं सदी में भारत के संबंध में लिखी गई टिप्पणियों का अनुवाद फ्रेंच से अँग्रेजी में किया था। यह किताब वर्ष 1937 में 'वाल्तेयर फ्रेग्मेंट्स ऑन इंडिया' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। 1943 के बंगाल के भीषण अकाल के समय फ्रेडा ने बंगाल के अकाल प्रभावित इलाक़ों का दौरा भी किया था और अपने अनुभवों को 'बंगाल लैमेंटिंग' नामक पुस्तक में दर्ज किया था।

बंगाल में फ्रेडा का यह दौरा जनवरी 1944 यानी बंगाल के अकाल के दूसरे चरण के दौरान हुआ था। खाद्यान्न के अभाव और भुखमरी की स्थिति ने अकाल के दुष्प्रभाव को पहले चरण से भी कहीं अधिक भयावह बना दिया था। समाचारपत्रों और न्यूज़ एजेंसियों ने भी बंगाल के अकाल के मुद्दे को विश्वस्तर पर उठाने से परहेज किया था। ऐसे में अकाल प्रभावित इलाकों का आँखों-देखा विवरण देने के चलते यह किताब ऐतिहासिक रूप से और महत्त्वपूर्ण हो उठती है। हाल के वर्षों में फ्रेडा बेदी की दो महत्त्वपूर्ण जीवनियाँ भी प्रकाशित हुई हैं। वे हैं : एंड्र्यू व्हाइटहेड द्वारा लिखित 'द लाइव्ज़ ऑफ फ्रेडा' (2019) और विकी मैकेंज़ी द्वारा लिखित 'द रिवोल्यूशनरी लाइफ ऑफ फ्रेडा बेदी' (2017)।

राहुल सांकृत्यायन और मेघनाद साहा

राहुल सांकृत्यायन अपनी तीसरी सोवियत यात्रा के दौरान जून 1945 में रूस में भारतीय वैज्ञानिक मेघनाद साहा से मिले थे। इलाहाबाद और कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्राध्यापक रहे मेघनाद साहा (1893-1956) को 'इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर फ़िज़िक्स' और 'इंडियन साइंस न्यूज़ एसोसिएशन' की स्थापना का श्रेय जाता है। वे विज्ञान की प्रसिद्ध पत्रिका 'साइंस एंड कल्चर' के संस्थापक-संपादक भी थे। इलेक्ट्रॉन, विकिरण, सापेक्षिकता, क्वांटम थियरी आदि वैज्ञानिक विषयों पर महत्त्वपूर्ण लेख लिखने के अलावा उन्होंने 'ट्रिटाइज़ ऑन हीट' एवं 'ट्रिटाइज़ ऑन मॉडर्न फ़िज़िक्स' जैसी पुस्तकें भी लिखी थीं।

डॉ. मेघनाद साहा सोवियत साइंस अकादमी की 220वीं जयंती के उपलक्ष्य में आयोजित समारोह में भाग लेने हेतु सोवियत रूस गए थे। मेघनाद साहा से अपनी भेंट के दौरान राहुल सांकृत्यायन को भारत के तत्कालीन राजनीतिक हालात के बारे में पता चला। डॉ. साहा ने उन्हें बताया कि भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान गिरफ़्तार किए गए कांग्रेसी नेताओं को अब रिहा कर दिया गया है और कांग्रेसी नेता शिमला में वाइसराय से वार्ता कर रहे हैं। मेघनाद साहा ने रूस यात्रा का विवरण अपनी किताब 'माई एक्सपीरियंसेज इन सोवियत रसिया' में दिया है, जिसमें उन्होंने राहुल सांकृत्यायन से अपनी मुलाक़ात का भी ज़िक्र किया है। सोवियत साइंस अकादमी द्वारा आयोजित इस समारोह में भाग लेने हेतु वैज्ञानिक सी.वी. रमन भी आमंत्रित किए गए थे, किन्तु किन्हीं कारणों से वे रूस नहीं जा सके। यहीं डॉ. मेघनाद साहा की भेंट प्रसिद्ध ब्रिटिश वैज्ञानिक और इतिहासकार जोसेफ़ नीधम (1900-1995) से हुई, जिन्होंने आगे चलकर 'साइंस एंड सिविलाइजेशन इन चाइना' सरीखा अप्रतिम ग्रंथ लिखा।

जब डॉ. मेघनाद साहा को यह पता चला कि अन्य देशों के वैज्ञानिक सोवियत साइंस अकादमी की जयंती के अवसर पर पढ़ने हेतु अपने राष्ट्र की ओर से संदेश लाए हैं, तब उन्होंने इस उद्देश्य से एक संदेश तैयार किया। वे चाहते थे कि इस संदेश को अंग्रेज़ी की बजाय बांग्ला या हिंदी जैसी किसी भारतीय भाषा या फिर संस्कृत में पढ़ा जाए, इसी आशय से उन्होंने राहुल सांकृत्यायन से सम्पर्क किया। इस संदर्भ में राहुल जी लिखते हैं कि 'भारत की उन खूसट खोपड़ियों में डॉ. मेघनाद साहा नहीं हैं, जो दूसरे देशों में जाकर अंग्रेज़ी को सर्वे-सर्वा मानने में जातीय अपमान का ख्याल नहीं करते।' अंततः राहुल जी ने उक्त संदेश का संस्कृत में अनुवाद कर उसे डॉ. साहा को सौंप दिया, जिसे उन्होंने अकादमी के समक्ष पढ़ा। वह संदेश इस प्रकार था :

> *भारत की जनता, एक सौ इकसठ बरस पहले स्थापित बंगाल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी और भारतीय वैज्ञानिक परिषदों और सभाओं के संघ के रूप में स्थित राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान की ओर से सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ की विज्ञान अकादमी का अपने अस्तित्व के दो सौ बीस बरस पूरा करने के उपलक्ष्य में अभिनंदन करता हूँ। क्रांति के पहले भी विज्ञान और साहित्य के क्षेत्र में अकादमी*

ने जो सफलताएँ प्राप्त की थीं, उन्हें विज्ञान के इतिहास में सुनहरे अक्षरों में लिखा गया है। भारतीय विद्या के क्षेत्र में रूसी प्रतिभाओं की देन, राथ और बोथलिंक के महान वैदिक कोश को – जोकि लेनिनग्राद में करीब सत्तर बरस पहले प्रकाशित हुआ – भारत बड़ी कृतज्ञतापूर्वक याद करता है। बौद्ध शास्त्र के महान विद्वान अकादमिक श्चेर्वात्स्की – जिन्होंने दो साल पूर्व निर्वाण प्राप्त किया – की गंभीर देनों को भी भारत बड़ी कृतज्ञतापूर्वक याद करता है।

उक्त संदेश में रूस में अक्तूबर क्रांति के पश्चात उद्योग, विज्ञान और प्रौद्योगिकी में आए क्रांतिकारी बदलावों का भी ज़िक्र किया गया। जिन्हें भारत के लिए प्रेरणादायी बताते हुए कहा गया कि 'वह इस बात की नई आशा और प्रेरणा देती है कि हम अपने त्रिविध शत्रुओं – दरिद्रता, रोग और खाद्याभाव – से संयुक्त बल से लड़ें। भारत सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ की गौरवशाली और सफलतापूर्वक सिद्धियों तथा राजनीतिक, आर्थिक, टेक्नोलॉजिकल और धार्मिक – इन चार प्रकार की क्रांतियों में सोवियत संघ की गौरवशाली साधनाओं के लिए साधुवाद देने में दुनिया के दूसरे देशों के साथ है।'

राहुल सांकृत्यायन और धर्मानंद कोसंबी

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में जिन भारतीय विद्वानों ने बौद्ध दर्शन के अध्ययन में अप्रतिम योगदान दिया, उनमें राहुल सांकृत्यायन और धर्मानंद कोसंबी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बौद्ध दर्शन के अध्ययन के लिए आचार्य धर्मानंद कोसंबी (1876-1947) ने ग्वालियर और बनारस में संस्कृत की पढ़ाई की। आगे चलकर वे त्रिपिटक और पालि ग्रन्थों के अध्ययन के लिए नेपाल और श्रीलंका भी गए, जहाँ उन्होंने महास्थविर सुमंगलाचार्य से बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया। उन्होंने बुद्धघोषाचार्य कृत 'विसुद्धिमग्ग' का संपादन किया। जैन धर्म के 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के 'चातुर्याम धर्म' पर एक पुस्तिका लिखने के साथ ही, उन्होंने शांतिदेवाचार्य की पुस्तक 'बोधिचर्यावतार' का मराठी और गुजराती में अनुवाद भी किया था। आचार्य कोसंबी की अप्रतिम विद्वत्ता और उनकी निष्ठा के विषय में काका कालेलकर ने आचार्य कोसंबी की पुस्तक 'भगवान बुद्ध : जीवन और दर्शन' की भूमिका में ठीक ही लिखा है कि 'बुद्ध भगवान के प्रति अनन्य निष्ठा होते हुए भी धर्मानंद जी ने असाधारण सत्यनिष्ठा से निर्भय होकर, जो कुछ सही मालूम हुआ वही इसमें लिखा है। और चूंकि बहुजन के कल्याण के लिए उन्हें लिखना था, इसलिए धर्मानंद जी ने यह चरित्र और अपनी दूसरी किताबें भी, सामान्य मनुष्य के समझने लायक सीधी सरल भाषा में लिखीं।'

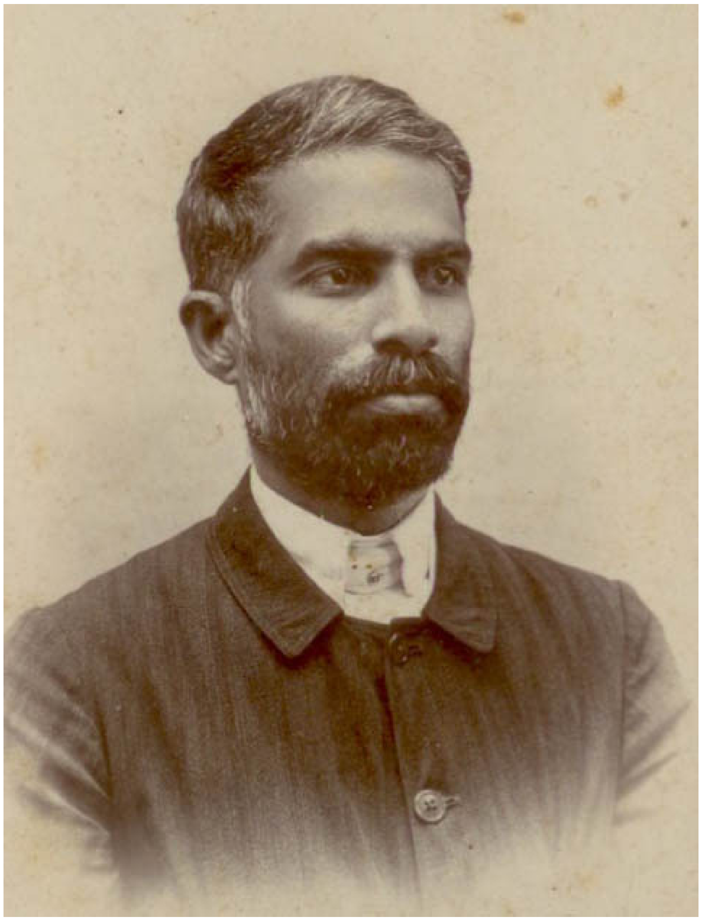

बौद्ध दर्शन में समान रुचि के चलते आचार्य कोसंबी से राहुल सांकृत्यायन का परिचय हुआ। वर्ष 1927-28 में अपनी लंका यात्रा के दौरान राहुल जी ने आचार्य कोसंबी की आत्मकथा 'निवेदन' पढ़ी थी। उनकी विद्वत्ता और घुमक्कड़ी वृत्ति के विषय में राहुल जी ने लिखा है कि 'मराठी और गुजराती में बौद्ध साहित्य के निर्माण का उन्होंने भारी काम किया। पालि का गंभीर ज्ञान उनकी कृतियों में झलकता है। वह विद्वान और साथ ही घुमक्कड़ भी थे। शायद यह घुमक्कड़ी प्रवृत्ति ही उन्हें स्थान और व्यक्ति से रुष्ट कर देती थी। वह व्यवस्था के अत्यंत प्रेमी थे और जरा भी अव्यवस्था देखने पर अपने को संभाल नहीं सकते थे।' राहुल जी की तरह ही रूसी विद्वान श्चेर्वात्स्की से आचार्य कोसंबी का निकट संपर्क रहा और डॉ. श्चेर्वात्स्की के बुलावे पर ही आचार्य कोसंबी ने भी सोवियत रूस की यात्रा की थी।

अगस्त 1947 में सोवियत रूस से भारत वापस लौटने पर राहुल सांकृत्यायन लगभग दो हफ्तों तक बंबई में रहे। इसी दौरान वे 'बहुजन विहार' भी गए, जिसकी स्थापना स्वयं धर्मानंद कोसंबी ने की थी। इसी विहार में धर्मानंद कोसंबी से राहुल सांकृत्यायन की कई मुलाकातें हुई थीं। किन्तु अब सिर्फ़ उन मुलाक़ातों की मधुर स्मृतियाँ ही शेष रह गई थीं क्योंकि दो महीने पहले जून 1947 में ही आचार्य कोसंबी का निधन हो चुका था। धर्मानंद कोसंबी के व्यक्तित्व के बारे में राहुल जी ने लिखा है कि

सफ़ेद दाढ़ी से ढका उनका सौम्य मुख कभी भूला नहीं जा सकता। वह सरलता की साकार मूर्ति थे और व्यवहार में अति मधुर। जब कभी जाने पर चाय बनाकर पिलाने का उनका आग्रह होता और पीये बिना पिंड नहीं छूटता था, जिन भावों के साथ चाय बनती थी, उसके कारण वह चौगुनी मधुर हो जाती थी।

असाध्य चर्म रोग से पीड़ित आचार्य कोसंबी ने स्वेच्छा से अन्न त्यागकर अपने प्राण दे दिए थे। आचार्य कोसंबी के इस निर्णय पर खेद जताते हुए राहुल जी लिखा कि 'उनका शरीर व्याधि से जर्जर हो रहा था, जिसे देखकर उनके मन में भारी निराशा पैदा हो गई। वह अपने जीवन को भार समझने लगे। नहीं चाहते थे कि उस भार को दूसरे भी उठाने के लिए मजबूर हों। अनशन शुरू कर दिया, जिसका अंत जीवन के साथ हुआ। यह आत्महत्या थी। आचार्य कोसंबी बौद्ध थे और जानते थे, आत्महत्या को बुद्ध ने बुरा बतलाया है।' 23 अगस्त 1947 को बहुजन विहार में ही आयोजित एक सभा में बोलते हुए राहुल जी को आचार्य कोसंबी की याद आती रही और वे लिखते हैं कि 'हृदय विचलित हो गया, गला रुँध गया और बोलना समाप्त करना पड़ा। लेकिन प्रिय हों या अप्रिय, सबका महाप्रस्थान एक दिन होना ही है।'

राहुल सांकृत्यायन और काशी प्रसाद जायसवाल

जिन भारतीय विद्वानों से राहुल सांकृत्यायन का सर्वाधिक आत्मीय संबंध रहा, उनमें से एक थे इतिहासकार काशी प्रसाद जायसवाल। काशी प्रसाद जायसवाल को हिन्दू राज्यतंत्र और प्राचीन भारत में गणतांत्रिक संस्थाओं के उद्भव और विकास के इतिहास पर लिखी उनकी कालजयी पुस्तक 'हिन्दू पॉलिटी' के लिए जाना जाता है, जो वर्ष 1924 में प्रकाशित हुई थी। जायसवाल जी 'बिहार एंड ओडिशा रिसर्च सोसाइटी' के संस्थापक सदस्य होने के साथ ही सोसाइटी की प्रतिष्ठित पत्रिका 'जर्नल ऑफ बिहार एंड ओडिशा रिसर्च सोसाइटी' के संपादक भी थे। 'इंडियन एंटीक्वेरी', 'जर्नल ऑफ द बंगाल एशियाटिक सोसाइटी', 'जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी', 'मॉडर्न रिव्यू' सरीखी पत्रिकाओं में लिखने के साथ-साथ जायसवाल जी हिंदी प्रदीप, सरस्वती, नागरी प्रचारिणी पत्रिका जैसी हिंदी की पत्रिकाओं में भी इतिहासविषयक लेख लिखा करते थे। उनकी पुस्तकों के अनुवाद भी काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित किए गए थे।

बीसवीं सदी के दूसरे दशक में बोधगया मंदिर के स्वामित्व का विवाद गहराने पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1925 में एक जांच समिति गठित की थी। जिसके अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद थे और समिति के अन्य सदस्य थे – ब्रज किशोर प्रसाद, काशी प्रसाद जायसवाल, रामउदार दास (राहुल सांकृत्यायन), अनागरिक धर्मपाल। इसी समिति में काम करते हुए ही राहुल जी, जो तब रामउदार दास नाम से जाने जाते थे, पहली बार काशी प्रसाद जायसवाल से मिले। इस प्रथम परिचय ने धीरे-धीरे इन दोनों विद्वानों के बीच प्रगाढ़ मित्रता की नींव रखी।

काशी प्रसाद जायसवाल ने भागलपुर में वर्ष 1933 में आयोजित हुए बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता की थी। इसी दौरान उन्होंने ऐतिहासिक बौद्ध ग्रंथ 'मंजुश्रीमूलकल्प' पर एक लेख लिखा। उस लेख को पढ़कर राहुल जी ने लिखा : 'जायसवाल जी जादूगर हैं, कहाँ से इतनी बातें निकाल लेते हैं। सचमुच ही उनकी प्रतिभा अद्वितीय थी। अफसोस यही रहता कि जीवन के बहुमूल्य समय को वह अपने योग्य काम में नहीं लगा सके।' आगे चलकर 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प'

को ही आधार बनाकर जायसवाल जी ने प्राचीन भारत और नेपाल के राजवंशों का इतिहास लिखा था। इसके अलावा उन्होंने वाकाटक, आंध्र-सातवाहन, नाग, भारशिव आदि प्राचीन भारतीय राजवंशों का इतिहास भी अपनी पुस्तक 'भारतवर्ष का अंधकारयुगीन इतिहास' में लिखा।

वर्ष 1933 में ही बड़ौदा में आयोजित प्राच्य सम्मेलन (ओरिएंटल कान्फ्रेंस) का सभापति काशी प्रसाद जायसवाल को और प्राच्य सम्मेलन के हिंदी विभाग का अध्यक्ष राहुल जी को चुना गया था। बड़ौदा में सम्मेलन में भाग लेने के बाद महाराष्ट्र और राजस्थान के अनेक ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण राहुल जी ने काशी प्रसाद जायसवाल के साथ किया था। राहुल जी की तिब्बत, जापान और अन्य यात्राओं हेतु आर्थिक सहयोग देने में भी काशी प्रसाद जायसवाल ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई थी। इस संदर्भ में उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए राहुल जी ने लिखा है कि 'डॉ. जायसवाल मेरी सहायता करने के लिए हर वक़्त उत्सुक रहते थे, लेकिन मैं उनके घर का एक व्यक्ति-सा होने के कारण उनकी आर्थिक अवस्था से परिचित था। इसलिए हमेशा उन पर कोई भार डालने से अपने को बचाता था।'

अगस्त 1937 में काशी प्रसाद जायसवाल की असमय मृत्यु ने राहुल और उनकी प्रगाढ़ बौद्धिक मित्रता का अंत कर दिया। उनकी मृत्यु से राहुल जी को गहरा मानसिक आघात पहुँचा। जो राहुल

जी की इस टिप्पणी में व्यक्त होता है, जिसे उन्होंने जायसवाल जी की मृत्यु के ठीक बाद लिखा था –

> *हा मित्र! हा बंधु! हा गुरो! अब तुम मना करने वाले नहीं हो, इसीलिए हमें ऐसा-वैसा कहने से कौन रोक सकता। हो सकता है कि तुम कहते – हमने भी तो आपसे सीखा है, किन्तु तुम नहीं जानते कि मैंने कितना तुमसे सीखा है। इतनी जल्दी प्रयाण! अभी तो अवसर आया था, अभी तो तुम्हारी सेवाओं की इस अभागे देश को जरूरत थी। आह! सभी आशाएँ खाक में मिल गईं! तुम्हारे बहुत से स्नेहभाजन थे, मैं भी उनमें से एक था। समय दूसरों के दिल से वियोग के दुख को क्षीण भले ही करता जाएगा, किन्तु स्मृति उसे दिन पर दिन ताजी करती जाएगी, तुम्हारा वह सांगोपांग भारत का इतिहास तैयार करने और साम्यवाद के लिए मैदान में कूदने का ख़्याल! हा! वंचित श्रमिक वर्ग! सहृदय मानव! निर्भीक अप्रतिम मनीषी! दुनिया ने तुम्हारी कदर न की!*

राहुल सांकृत्यायन और इतिहासकार बी.बी. मिश्र

राहुल सांकृत्यायन की आत्मकथा 'मेरी जीवन-यात्रा' पढ़ते हुए आधुनिक भारत के दिग्गज इतिहासकार बी.बी. मिश्र से उनके आत्मीय संबंध और निकट सम्पर्क के बारे में भी पता चलता है। सोवियत रूस की अपनी तीसरी और अंतिम यात्रा के दौरान राहुलजी को जून 1947 में बी.बी. मिश्र का पत्र मिला। जिसमें उन्होंने राहुल से इंग्लैंड होते हुए भारत लौटने की बात कही थी, यात्रा-खर्च के बाबत उनका सुझाव था कि राहुलजी के लिए यह अधिक किफ़ायती होगा। राहुल लिखते हैं कि '19 जून को मेरे मित्र बाँकेबिहारी मिश्र का पत्र लंदन से आया, जिससे फिर विचार बदलना पड़ा...बाँकेजी मेरे पुराने सहयोगी मित्र थे। बिहार में किसान सत्याग्रह करके मैं जेल चला गया, तो उन्होंने एक हाईस्कूल की प्रधानाध्यापकी छोड़कर किसान सत्याग्रह को संभाला और बड़ी लगन से काम किया। इधर वह इतिहास में पीएचडी करने लिए लंदन आए थे। उनकी सलाह थी, साथ ही भारत चलने की।'

उल्लेखनीय है कि 1909 में पैदा हुए इतिहासकार बी.बी. मिश्र भारत के उत्कृष्ट प्रशासनिक इतिहासकारों में से एक थे। किसान आंदोलनों में उनकी भागीदारी उन्हें आचार्य नरेंद्र देव सरीखे समाजवादी नेताओं के निकट भी ले गई। भारतीय मध्यम वर्ग पर लिखी किताब में उन्होंने आचार्य नरेंद्र देव को बड़ी आत्मीयता के साथ याद किया है, जिनसे वे आखिरी बार लंदन में ही मिले थे। आधुनिक भारत में मध्यम वर्ग के उदय पर उनका विचारोत्तेजक और अनूठा काम है, 'द इंडियन मिडल क्लासेज़'। भारतीय मध्यम वर्ग पर उनका यह काम उस फ़ेलोशिप का नतीजा था, जो उन्हें स्कूल ऑफ ओरिएंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज़ के निदेशक सी.एच. फ़िलिप्स के आमंत्रण पर मिली थी। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा 1961 में प्रकाशित इस किताब में बी.बी. मिश्र ने लिखा कि जहाँ यूरोप में मध्यम वर्ग का उदय आर्थिक और प्रौद्योगिक बदलावों का परिणाम था। वहीं इसके उलट भारत में यह कानून और सार्वजनिक प्रशासन प्रणाली में आए बदलावों का नतीजा था, क्योंकि यहाँ मध्यम वर्ग मुख्यतः शिक्षित भारतीयों से ही बना था।

बी.बी. मिश्र का सबसे महत्त्वपूर्ण काम प्रशासनिक इतिहास पर है, 'द एडमिनिस्ट्रेटिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया'। जिसमें उन्होंने 1834-1947 तक औपनिवेशिक भारत का प्रशासनिक इतिहास लिखते हुए कंपनी की प्रशासनिक नीतियों, चार्टर एक्ट, भारतीय परिषद अधिनियमों और केंद्रीय प्रशासन की संरचना की गहन पड़ताल की थी। 'द ब्यूरोक्रेसी इन इंडिया' शीर्षक वाली किताब में बी.बी. मिश्र ने औपनिवेशिक भारत में नौकरशाही व्यवस्था के विकास का विस्तृत इतिहास लिखा। जिसमें उन्होंने नौकरशाही से जुड़ी हेगेल, मार्क्सवादी और मैक्स वेबर की अवधारणाओं का विश्लेषण किया। साथ ही, कंपनी से लेकर ब्रिटिश काल में नौकरशाही के चरित्र और स्वरूप में आते बदलावों को रेखांकित किया। इसमें उन्होंने वैधानिक सिविल सेवा, प्रांतीय सिविल सेवा, नौकरशाहों के प्रशिक्षण, नौकरशाही, भारतीय मध्यम वर्ग व लोकतन्त्र के रिश्ते का भी गहरा विश्लेषण किया।

1963 में बी.बी. मिश्र ने चम्पारण सत्याग्रह से जुड़े दस्तावेज़ों का सम्पादन भी किया था, जो 'सेलेक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज़ मूवमेंट इन चम्पारण, 1917-18' शीर्षक से बिहार सरकार द्वारा प्रकाशित किया गया था। ईस्ट इंडिया कंपनी के केंद्रीय प्रशासन और उसकी

साम्राज्यवादी आर्थिक नीतियों पर बी.बी. मिश्र ने 'द सेंट्रल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द ईस्ट इंडिया कंपनी' शीर्षक से किताब लिखी थी। वे विस्कान्सिन और पेंसिलवेनिया यूनिवर्सिटी में विजिटिंग प्रोफेसर भी रहे थे।

राहुल सांकृत्यायन और ब्रिटिश इतिहासकार विक्टर कियर्नन

वर्ष 1942 में राहुल सांकृत्यायन ने हजारीबाग सेंट्रल जेल में रहते हुए अपनी प्रसिद्ध किताब 'वोल्गा से गंगा' लिखी थी। कुल बीस कहानियों वाली इस किताब में छह हजार ईसा पूर्व से लेकर 1942 तक 'मानव समाज के ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनैतिक प्रवाहों' का चित्रण करने की कोशिश की गई थी। इस किताब के महत्त्व को बताते हुए पहले संस्करण की भूमिका में राहुल ने लिखा कि 'मानव समाज आज जहाँ है, वहाँ प्रारम्भ में ही नहीं पहुँच गया था, इसके लिए उसे बड़े-बड़े संघर्षों से गुजरना पड़ा। मानव समाज की प्रगति का सैद्धान्तिक विवेचन मैंने अपने ग्रंथ "मानव समाज" में किया है। इसका सरल चित्रण भी किया जा सकता है, और उससे प्रगति को समझने में आसानी हो सकती है, इसी ख्याल ने मुझे "वोल्गा से गंगा" लिखने के लिए मजबूर किया।'

कम्युनिस्ट पार्टी के नेता पी.सी. जोशी ने राहुल सांकृत्यायन की इस किताब को पढ़कर न सिर्फ बेहद पसंद किया, बल्कि ब्रिटिश मार्क्सवादी इतिहासकार विक्टर गॉर्डन कियर्नन से इस पुस्तक का अँग्रेजी में अनुवाद करने के लिए भी कहा। उल्लेखनीय है कि विक्टर गॉर्डन कियर्नन (1913-2009) उस वक़्त लाहौर के ऐचिसन कॉलेज में इतिहास के शिक्षक थे और वे भी राहुल के कृतित्व से परिचित थे। लिहाजा विक्टर कियर्नन ने 'वोल्गा से गंगा' के अनुवाद का काम शुरू किया। अनुवाद में आने वाली दिक्कतों का ब्यौरा कियर्नन ने अनुवादक की भूमिका में दिया है।

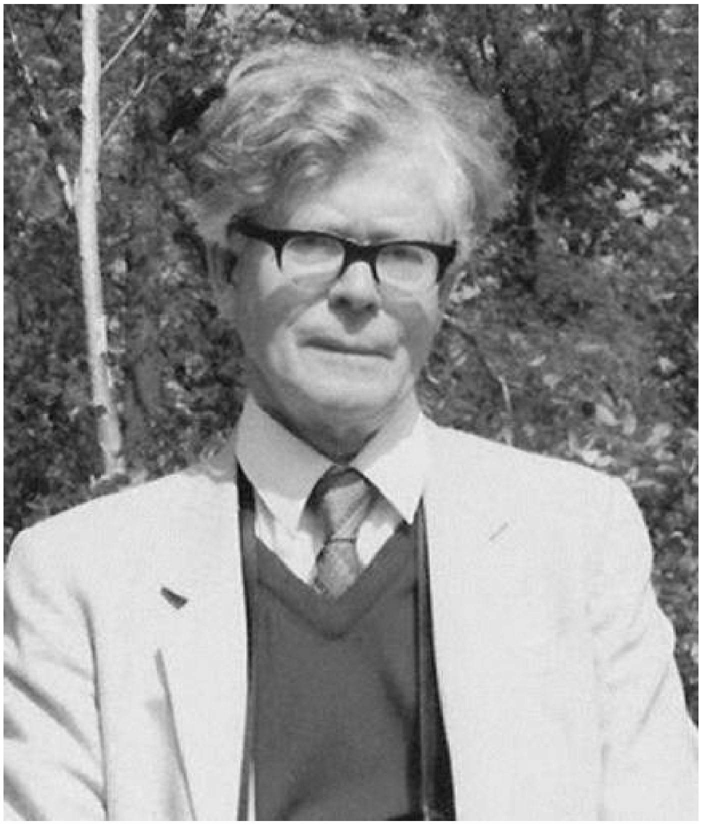

कियर्नन ने जब अनुवाद शुरू ही किया था, तभी राहुल सोवियत रूस चले गए, जिससे अनुवाद में उनकी मदद ले पाना संभव नहीं रहा। साथ ही, कियर्नन किताब के संबंध में राहुल से कुछ सवाल भी पूछना चाहते थे, जो अब मुश्किल था। पर अनुवाद के इस काम में कियर्नन की मदद की, ऐचिसन कॉलेज के ही उनके दो सहयोगी शिक्षकों ने। ये थे : डॉ. हरदेव बाहरी और पी.सी. जैन ने। उल्लेखनीय है कि डॉ. हरदेव बाहरी ने आगे चलकर हिन्दी के कई मानक शब्दकोशों का भी सम्पादन किया। जुलाई 1946 में कियर्नन ने 'वोल्गा से गंगा' के अँग्रेजी अनुवाद का काम पूरा किया और यह किताब अगले वर्ष प्रकाशित हुई।

उल्लेखनीय है कि दिग्गज इतिहासकार विक्टर कियर्नन ने राहुल सांकृत्यायन के अलावे फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ और इक़बाल की रचनाओं के भी अँग्रेजी में अनुवाद किए। कियर्नन बाद में इंग्लैंड चले गए, जहाँ वे एडिनबरा यूनिवर्सिटी के इतिहास विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए। उनकी कुछ प्रमुख किताबें हैं : 'द लॉर्ड्स ऑफ ह्यूमन काइंड' (1969), 'द ड्यूअल इन यूरोपियन हिस्ट्री' (1988), 'इंपीरियलिज़्म एंड इट्स कांट्राडिक्संस' (1995), 'कॉलोनियल एम्पायर्स एंड आर्मीज़, 1815-1960' (1982)।

हिमालय के महान यात्री : राहुल सांकृत्यायन और स्वामी प्रणवानन्द

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में राहुल सांकृत्यायन और स्वामी प्रणवानन्द ने तिब्बत और हिमालय की रोमांचक यात्राएँ कीं। उनके लिखे यात्रा-वृत्तांत भारतीय साहित्य की धरोहर है। जहाँ राहुल ने 'तिब्बत में सवा साल', 'किन्नर देश में', 'मेरी लद्दाख यात्रा' 'दार्जिलिंग परिचय', कुमायूं, गढ़वाल जैसी किताबें लिखी थीं। वहीं स्वामी प्रणवानन्द ने 'कैलास मानसरोवर', 'एक्सप्लोरेशन इन तिब्बत' जैसी पुस्तकें लिखीं। हिमालय के इन दो महान यात्रियों की नीचे दी गई तस्वीर वर्ष 1936 में नेपाल में ली गई थी।

राहुल सांकृत्यायन का स्वामी प्रणवानन्द से परिचय उनकी युवावस्था में ही लाहौर में हुआ था। तब राहुल आर्य समाज से सम्बद्ध थे। आगरा में आर्य समाज के मुसाफिर विद्यालय में एक साल अध्ययन करने के बाद वर्ष 1916 में राहुल आगे की पढ़ाई के लिए लाहौर गए। राहुल ने लाहौर के डीएवी कॉलेज के संस्कृत विभाग में दाखिला लिया। राहुल डीएवी कॉलेज के ही छात्रावास 'वैदिक आश्रम' में रहा करते थे। वहीं रहते हुए राहुल जी का संपर्क लाहौर के अनारकली इलाके में स्थित वंशीधर के मंदिर में रहने वाले कुछ विद्यार्थियों से हुई। इनमें बलदेव चौबे, मोहनलाल, महेशप्रसाद के साथ-साथ युवा स्वामी प्रणवानन्द भी थे।

तब तक प्रणवानन्द ने संन्यास नहीं ग्रहण किया था और उनका वास्तविक नाम था कनकदंडी वेंकट सोमयाजुलू। वे भी डीएवी कॉलेज के छात्र थे। राहुल जी ने 'मेरी जीवन-यात्रा' में लिखा है कि सोमयाजुलू को वे लोग 'मिस्टर' कहकर पुकारा करते थे। वंशीधर के मंदिर को राहुल जी ने इन सभी साथियों का 'सम्मिलन मंदिर' कहा है। राहुल जी ने डीएवी कॉलेज के दो शिक्षकों पंडित भगवद्दत्त और रामगोपाल शास्त्री से विशेष रूप से प्रभावित होने का ज़िक्र भी किया है। कुछ महीनों बाद जब राहुल लाहौर से चले गए, तब उनका संपर्क सोमयाजुलू (प्रणवानन्द) से टूट गया।

राहुल की तरह ही प्रणवानन्द भी कांग्रेस से जुड़े रहे और बाद में, उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया था।

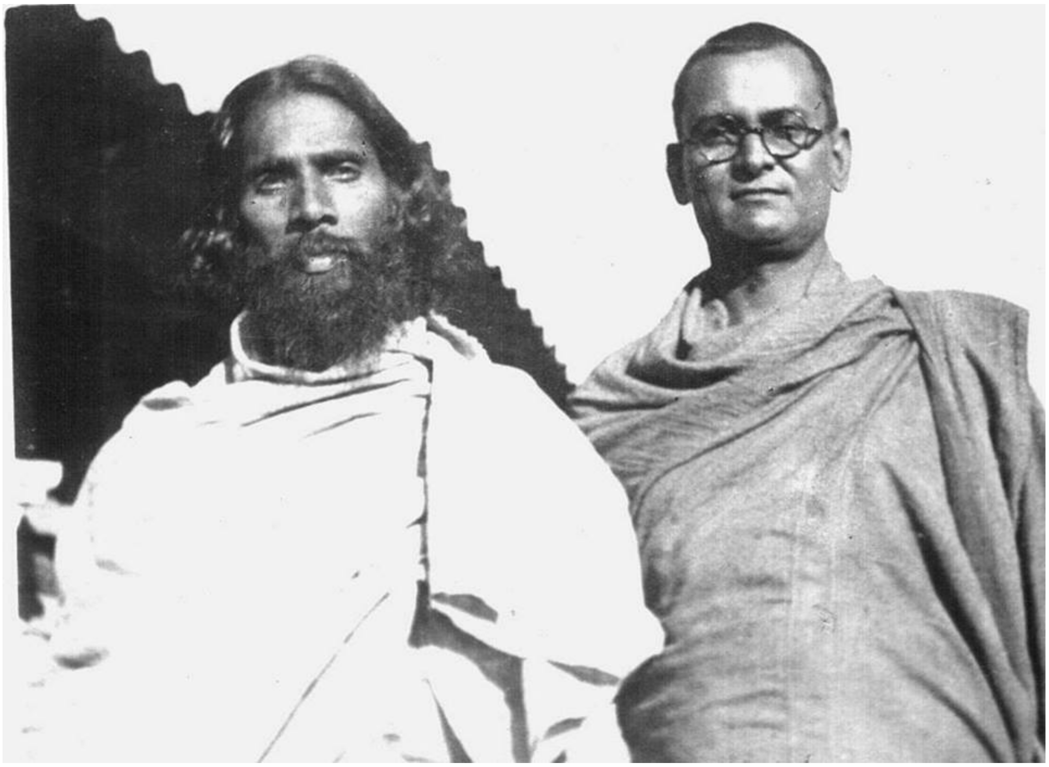

ये दोनों मित्र लगभग दो दशकों के बाद वर्ष 1936 में फिर से नेपाल में मिले। तब राहुल जी तिब्बत की अपनी तीसरी यात्रा की तैयारी में थे। तभी उन्हें गोकुलचन्द्र शास्त्री से पता लगा कि प्रणवानन्द नेपाल में ही हैं। राहुल उस सुखद समाचार की सूचना पाकर कितने हर्षित हुए, इसका अंदाज़ा उनके इन शब्दों से मिलता है : 'लाहौर के छात्रावस्था के मित्र सोमयाजुलू, जिन्हें हम लोग प्यार से मिस्टर कहा करते थे। 17 वर्ष बाद आज इतना पास आ गए हैं, फिर मिलने की इच्छा क्यों न होती? यद्यपि उनका शरीर अब भी वैसा ही पतला था, रंग वैसा ही साँवला था, किन्तु सिर पर लंबे-लंबे बाल और मुँह पर लंबी दाढ़ी – ऐसे भेष को देखकर आदमी जल्दी भ्रम में पड़ सकता है, लेकिन मुझे पहचानने में कोई कठिनाई नहीं हुई।'

समय के इस लंबे अंतराल ने राहुल और प्रणवानन्द की जीवान-दृष्टि में भले ही काफी अंतर ला दिया हो। लेकिन राहुल जी के अनुसार एक बात दोनों समान में थी और वह थी - तिब्बत यात्रा के कष्टों में आनंद उठाने का अपूर्व साहस। जब राहुल बौद्ध दर्शन के अध्ययन के लिए 1927-29 के दौरान सीलोन (श्रीलंका) गए हुए थे, उसी समय प्रणवानन्द ने पहली बार 1928 में कैलास मानसरोवर की यात्रा की। उसके बाद उन्होंने लगभग हर वर्ष कैलास मानसरोवर की यात्रा और

परिक्रमा की। 1936-37 में तो कैलास में ही एक वर्ष रहकर उन्होंने वहाँ होने वाले प्राकृतिक परिवर्तनों का अध्ययन किया।

बारह मास के उन अनुभवों का विस्तार से वर्णन स्वामी प्रणवानन्द ने अपनी पुस्तक 'कैलास-मानसरोवर' में किया है। वर्ष 1943 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन से छपी इस पुस्तक की भूमिका कलाविद और इतिहासकार वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखी थी। इसके छह साल बाद कैलास मानसरोवर की यात्रा पर ही अंग्रेज़ी में छपी स्वामी प्रणवानन्द की पुस्तक की भूमिका जवाहरलाल नेहरू ने लिखी। अप्रैल 1949 में लिखी इस भूमिका में नेहरू ने लिखा कि ‘लंबे समय से कैलास मानसरोवर की यात्रा की इच्छा होने के बावजूद मैं अब तक कैलास मानसरोवर की यात्रा नहीं कर सका हूँ। लेकिन इस किताब में कैलास मानसरोवर का विवरण पढ़ते हुए और वहाँ की अद्भुत तस्वीरें देखकर मेरे मन को गहरा सुकून मिला है।’

राहुल सांकृत्यायन और सदरूद्दीन ऐनी

राहुल सांकृत्यायन महान ताजिक साहित्यकार सदरूद्दीन ऐनी की रचनाओं के न सिर्फ़ मुरीद थे, बल्कि उन्होंने सदरूद्दीन ऐनी के अनेक उपन्यासों का हिंदी अनुवाद भी किया था। अपनी सोवियत यात्राओं के दौरान ही राहुल सांकृत्यायन सदरूद्दीन ऐनी (1878-1954) की रचनाओं से वाबस्ता हुए। मध्य एशिया के इतिहास में राहुल जी की उत्कट रुचि ने ही उन्हें मध्य एशिया के विभिन्न देशों में रचे गए साहित्य की ओर आकृष्ट किया और इसी क्रम में उनका परिचय सदरूद्दीन ऐनी की रचनाओं से हुआ। सदरूद्दीन ऐनी की तुलना प्रेमचंद से करते हुए राहुल जी ने उन्हें 'सोवियत मध्य एशिया का प्रेमचंद' कहा है। ऐनी का जन्म बुखारा में हुआ था। वर्ष 1917 की 'फरवरी क्रांति' में भाग लेने के कारण सदरूद्दीन ऐनी को गिरफ़्तार कर लिया गया। बाद में उन्हें रूसी क्रांति-सेना ने रिहा किया और वे 1917 में ही समरकन्द आ गए। 1923 में उन्हें अखिल सोवियत लेखक संघ का सदस्य चुना गया और 1941 में उन्हें 'ऑर्डर ऑफ लेनिन' सम्मान से नवाजा गया।

उल्लेखनीय है कि सदरूद्दीन ऐनी ताजिक भाषा के पहले उपन्यासकार थे। उनके महत्त्व को रेखांकित करते हुए राहुल जी ने अपनी आत्मकथा 'मेरी जीवन-यात्रा' में लिखा है कि 'ऐनी से पहले ताजिक भाषा में कोई पुस्तक नहीं थी। ताजिक भाषा फ़ारसी की एक बोली थी। लेकिन क्रांति ने उसे शिक्षा का माध्यम बनाकर साहित्यिक भाषा के रूप में परिणत कर दिया।' किसी भाषा के पहले उपन्यासकार की कृतियों की जो स्वाभाविक सीमाएँ या दोष होते हैं, वे प्रायः ऐनी के उपन्यासों में भी दिखाई देती हैं। पर ऐनी की उपलब्धियाँ और उनकी कृतियों में अंतर्निहित गहरी संवेदना उन सीमाओं को ढक देने का काम करती हैं। इसी संदर्भ में राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि

किसी भाषा के पहले मौलिक लेख के रास्ते में जो कठिनाइयाँ होती हैं और इनके कारण जो दोष दिखाई पड़ते हैं, वह ऐनी में मिलते हैं। उसके दोष हैं, विशृंखलता, योजनाहीनता, पात्रों के अयोग्य संवाद। लेकिन गुण कहीं अधिक हैं। ऐनी दृश्यों का चित्रण बड़े ही सुंदर और स्वाभाविक ढंग से करना जानता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में भी वह सिद्धहस्त है। वर्ग-प्रतिक्रिया का वर्णन करने वाले वैसे लेखक तो बिरले ही मिलेंगे।

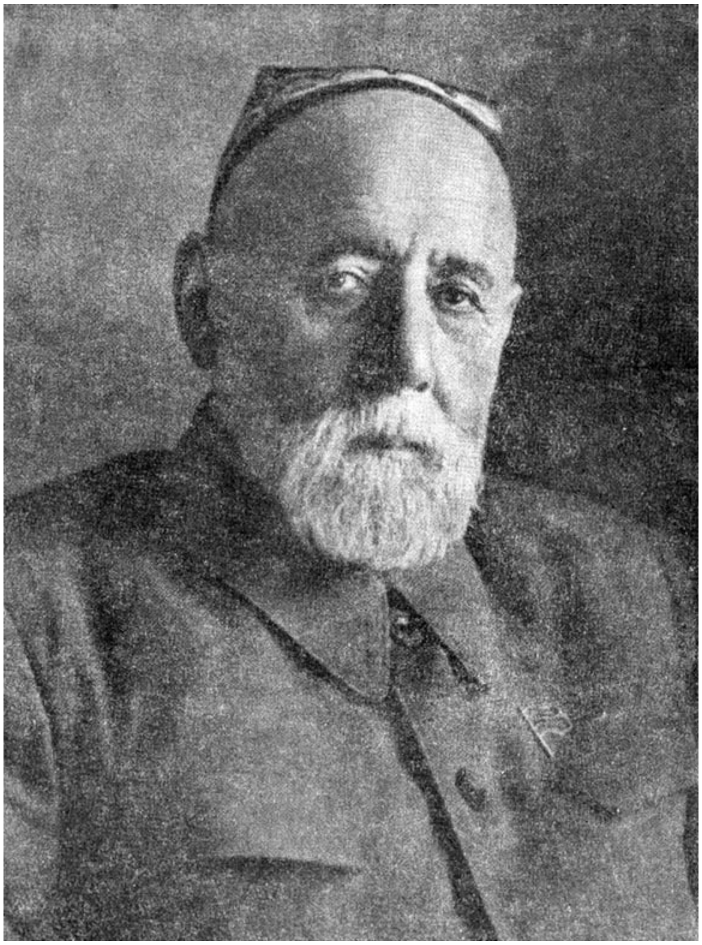

सदरूद्दीन ऐनी के अलावा राहुल सांकृत्यायन ने गनी अब्दुल्ला, जलाल इकरामी, लाहूती जैसे अन्य उल्लेखनीय ताजिक साहित्यकारों की कृतियों को भी पढ़ा और सराहा। अपनी तीसरी सोवियत यात्रा के दौरान जब राहुल सांकृत्यायन लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में अध्यापन कर रहे थे, उस वक़्त सदरूद्दीन ऐनी के बेटे कमाल ऐनी भी उसी विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे। मार्च 1946 में राहुल सांकृत्यायन की मुलाक़ात कमाल से हुई। कमाल ऐनी के बारे में राहुल जी ने लिखा है कि 'समरकन्द में पैदा होने के कारण मातृभाषा ताजिक होने के साथ वे उजबेक भाषा को भी मातृभाषावत ही बोल सकते थे। उनके लिए अपने नगर में भी विश्वविद्यालय था, स्तालिनाबाद में ताजिकिस्तान का विश्वविद्यालय था, जिसका माध्यम ताजिक भाषा थी। लेकिन वह समरकन्द से

दूर लेनिनग्राद में पढ़ने आए थे। शायद उनका लक्ष्य ताजिक भाषातत्त्व के अध्ययन की ओर था।' सोवियत रूस में रहते हुए राहुल जी ने सदरूद्दीन ऐनी के दो उपन्यासों 'दाखुंदा' और 'गुलामान' का पहले-पहल उर्दू में अनुवाद किया। भारत लौटने पर इन उपन्यासों के उर्दू में प्रकाशित होने में आ रही कठिनाइयों को देखकर उन्होंने इनके हिंदी अनुवाद किए, जो आगे चलकर 'दाखुंदा' और 'जो दास थे' शीर्षक से प्रकाशित हुए। बाद में, राहुल जी ने सदरूद्दीन ऐनी की अन्य कृतियों 'अदीना', 'यतीम' और 'सूदखोर की मौत' का भी हिंदी अनुवाद किया।

'अदीना' उपन्यास के हिंदी अनुवाद की भूमिका में राहुल जी ने लिखा है कि 'सदरूद्दीन ऐनी जदीदों (नवयुगवादियों) के आंदोलन का एक प्रसिद्ध प्रतिनिधि तथा बुखारा की क्रांतिकारी हलचल में आरंभ से ही काम करने वाला रहा। ऐनी यद्यपि उन व्यक्तियों में था, जिन्होंने बुखारा में जदीदी आंदोलन की नींव डाली, तथापि 'जदीदवाद' के खोखलेपन से जल्दी ही परिचित हो, उसने बोल्शेविक क्रांति के पथ को अपना लिया।' ऐनी के उपन्यासों को राहुल जी ने इतिहास के समतुल्य माना। ऐनी की पुस्तकों के व्यापक प्रभाव और उनकी लोकप्रियता के बारे में बताते हुए 'दाखुंदा' के हिंदी अनुवाद की भूमिका में राहुल जी ने लिखा है कि ऐनी ने इन किताबों को अपने लोगों के लिए लिखा था, जिनसे उनका मनोरंजन ही नहीं उनकी शिक्षा भी हुई। ऐनी ने अपने उपन्यासों में मध्य एशिया के समाज का सूक्ष्म चित्र उतारकर रख दिया, जिससे भविष्य के इतिहासप्रेमी तथा समाजशास्त्री बहुत लाभ उठा सकेंगे।

राहुल सांकृत्यायन और सत्यानंद स्टोक्स

अगस्त 1948 में हिमाचल में अपनी कोटगढ़ यात्रा के दौरान राहुल सांकृत्यायन वहाँ मौजूद सेब के बागों की बहुतायत से प्रभावित हुए। कोटगढ़ में सेब के बाग लगाने और समूचे हिमाचल में सेब की खेती को बढ़ावा देने का श्रेय सत्यानंद स्टोक्स (1882-1946) को जाता है। अमेरिका के एक क्वेकर परिवार में पैदा हुए सत्यानंद स्टोक्स का वास्तविक नाम सैमुएल इवान्स स्टोक्स था। 22 वर्ष की अवस्था में वर्ष 1904 में स्टोक्स भारत आए और शिमला के निकट एक कुष्ठरोगियों की बस्ती में उन्होंने काम करना शुरू किया। भारत आने पर शुरू के कुछ वर्षों तक तो वे एकांतवासी योगी बनकर रहे। किन्तु इसे व्यर्थ जानकर वे एक पहाड़ी स्त्री से विवाह कर गृहस्थ बन गए।

वे राष्ट्रीय आंदोलन में भी सक्रिय रहे और असहयोग आंदोलन के दौरान उन्होंने जेल-यात्रा भी की। वे अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के एकमात्र अमेरिकी सदस्य थे और उन्होंने वर्ष 1921 में कांग्रेस घोषणापत्र पर हस्ताक्षर भी किए थे। अपने पुत्र की असमय मृत्यु के बाद वे हिन्दू धर्म और अध्यात्म की ओर आकृष्ट हुए और वर्ष 1932 में उन्होंने हिन्दू धर्म अपना लिया। उनके जीवन में आए इन क्रांतिकारी बदलावों के विषय में राहुल जी ने लिखा है कि ‘प्रथम महायुद्ध के जमाने में जिसने अंग्रेज़ी सेना में भर्ती करने का काम किया तथा विजय स्मारक को अपने बँगले के भीतर खड़ा किया था, वह भारत को अब भी परतंत्र रखने की अंग्रेज़ों की मनोवृत्ति देखकर विद्रोही हो गया। खादी पहनी, प्रचार किया, जेल गए। अपने हाथ के बनाए विजय-स्मारक को हटाकर वहाँ छोटा-सा गीता मंदिर बना दिया।’ 1948 में राहुल जी की भेंट सत्यानंद स्टोक्स के दो बेटों प्रीतमचन्द और लालचंद से हुई थी।

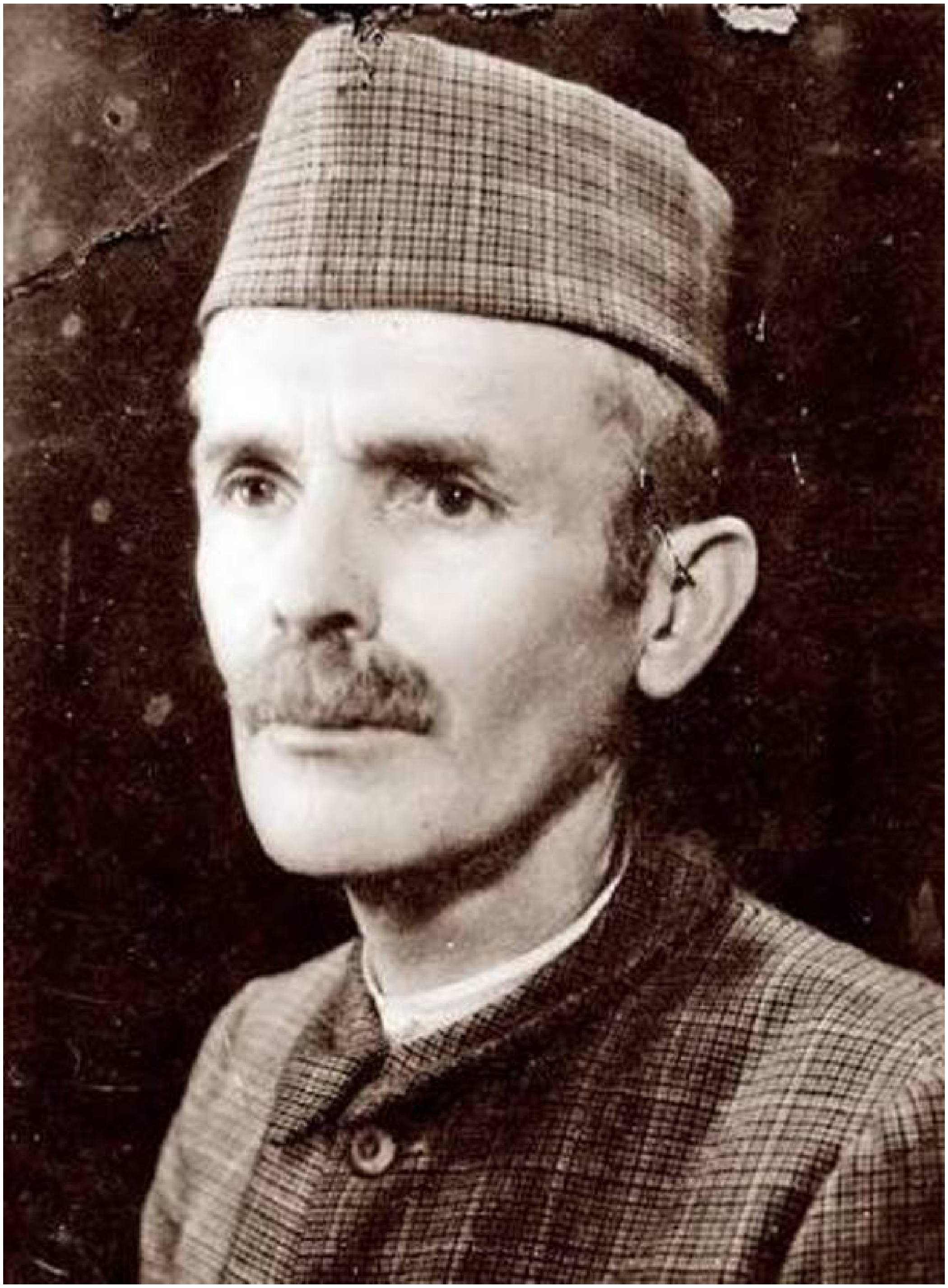

सत्यानंद स्टोक्स कोटगढ़वासियों के लिए पितातुल्य थे। राहुल जी के अनुसार, 'जब सत्यानंद स्टोक्स मरे तो सारे कोटगढ़ और आसपास के लोग उनके लिए ऐसे रो रहे थे, मानो उनके अपने पिता की मृत्यु हो गई हो। स्टोक्स अपने बच्चों की ज़िम्मेदारी को समझते थे, लेकिन उससे बढ़कर कोटगढ़ वालों की सेवा को जीवन का आदर्श मानते थे।' इसी क्रम में, सत्यानंद स्टोक्स ने देश-विदेश से सेब की अनेक प्रजातियाँ कोटगढ़ मंगाई और उनकी पौध तैयार कर लोगों को सेब के बाग लगाने की प्रेरणा दी। साथ ही, वे कर्ज में डूबे हुए लोगों को सूदखोरों और महाजनों के चंगुल

से बचाने में भी सदैव तत्पर रहे। सत्यानंद स्टोक्स द्वारा लिखी गई कुछ प्रमुख किताबें हैं – अर्जुन : द लाइफ स्टोरी ऑफ एन इंडियन बॉय, द गोस्पेल एकार्डिंग टू ज्यूज़ एंड पैगंस, द फ़ेल्योर ऑफ यूरोपियन सिविलाइज़ेशन एज़ ए वर्ल्ड कल्चर, सत्यकाम : मैन ऑफ टू डिज़ायर। सत्यानंद स्टोक्स की पौत्री आशा शर्मा ने उनकी जीवनी लिखी है, जिसका शीर्षक है – 'एन अमेरिकन इन खादी'।

सत्यानंद स्टोक्स महात्मा गांधी के भी निकट संपर्क में रहे। 1921 में प्रकाशित हुई स्टोक्स की पुस्तक 'टू अवेकिंग इंडिया' की भूमिका स्वयं महात्मा गांधी ने लिखी थी। स्टोक्स की पुस्तक के महत्त्व को रेखांकित करते हुए महात्मा गांधी ने लिखा था कि

> *इस पुस्तक में श्री स्टोक्स ने विदेशी कपड़े की होली जलाने के समर्थन में केवल अपना तर्क ही नहीं दिया है, बल्कि स्वदेशी का अर्थशास्त्र भी दिया है। देश के सम्मुख जो फौरी कार्यक्रम रखा गया है उसकी पूर्ति के लिए विदेशी कपड़े की होली जलाना भी आवश्यक है। किन्तु ऐसे समय में जब विदेशी कपड़े की होली पर घोर आक्षेप किया जा रहा है, श्री स्टोक्स प्रयत्न अवश्य ही सहायक सिद्ध होगा।*

राहुल सांकृत्यायन और फ्रेडरिक (पहाड़ी) विल्सन

पचास के दशक में मसूरी में रहते हुए राहुल सांकृत्यायन ने फ्रेडरिक (पहाड़ी) विल्सन से जुड़ी किंवदंतियों को सुना और उनकी दिलचस्पी फ्रेडरिक विल्सन के जीवन में बढ़ी।

राहुलजी ने मसूरी के लोगों से बातचीत कर और विल्सन के उत्तराधिकारियों से मिलकर 'पहाड़ी' विल्सन के बारे में जानकारी जुटानी शुरू की। वे विल्सन की एक छोटी-सी जीवनी भी लिखना चाहते थे। मई-जून 1943 में अपनी उत्तराखंड की यात्रा के दौरान राहुलजी ने हरसिल स्थित विल्सन का बँगला देखा था। विल्सन के जीवन में राहुलजी की दिलचस्पी क्यों हुई, इसके जवाब में उन्होंने लिखा है कि विल्सन ने एकांत शिकारी जीवन का आनंद लिया और जब तक पैरों में बल रहा, पश्चिमी तथा मध्य हिमालय में वह घूमता रहा। वह एक आदर्श घुमक्कड़ था, इसलिए शिकारी विल्सन की तरफ मेरा ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था।

विल्सन के बारे में जानकारी जुटाने के उद्देश्य से राहुल सांकृत्यायन ने बैरिस्टर मुकुंदीलाल और विल्सन के बेटे चार्ल्स (चार्ली) की सत्तर वर्षीया पत्नी से भी बातचीत की। चार्ली की पत्नी के पास विल्सन से जुड़ी कोई पुरानी सामग्री तो नहीं थी, लेकिन उसने अपने पति द्वारा 'द स्टेट्समैन' में लिखे गए लेख की कटिंग जरूर राहुलजी को दी, जो चार्ली ने अपने पिता फ्रेडरिक विल्सन के बारे में लिखी थी। राहुलजी 'मेरी जीवन-यात्रा' में लिखते हैं कि 'हरसिल के शिकारी विल्सन 1840 में आकर हिमालय के ही बन गए थे। उनकी पहाड़ी स्त्री की संतान पिता की संस्कृति में दीक्षित हो एंग्लो-इंडियन बनी। उसने गढ़वाल में पहले-पहल आलू का प्रचार किया। उसने नदियों द्वारा ऊपर के जंगलों की लकड़ी नीचे भेजने का पहले-पहल रास्ता निकाला था।'

फ्रेडरिक विल्सन को 'राजा ऑफ हरसिल' भी कहा जाता था। महज़ 17 वर्ष की आयु में विल्सन इंग्लैंड से कलकत्ता आया और बंगाल नेटिव इन्फैन्ट्री में शामिल हो गया। विल्सन प्रथम ब्रिटिश-अफ़गान युद्ध के दौरान वर्ष 1841 में मसूरी गया। वहाँ से वह हरसिल में जाकर बस गया, जोकि भागीरथी के किनारे बसा हुआ आख़िरी गाँव था। एक शिकारी और लकड़ी के व्यापारी के रूप में विल्सन ने प्रसिद्धि अर्जित की और उसने अपने नाम से एक सिक्का भी जारी किया। विल्सन ने

ब्रिटिश साम्राज्य के लिए जासूसी भी की और गुप्तचरों को प्रशिक्षण भी दिया। हरसिल में उसने मुखबा गाँव की दो स्थानीय महिलाओं से विवाह कर अपना परिवार बसा लिया। विल्सन के तीन बेटे थे : नथानिएल, चार्ल्स और हेनरी।

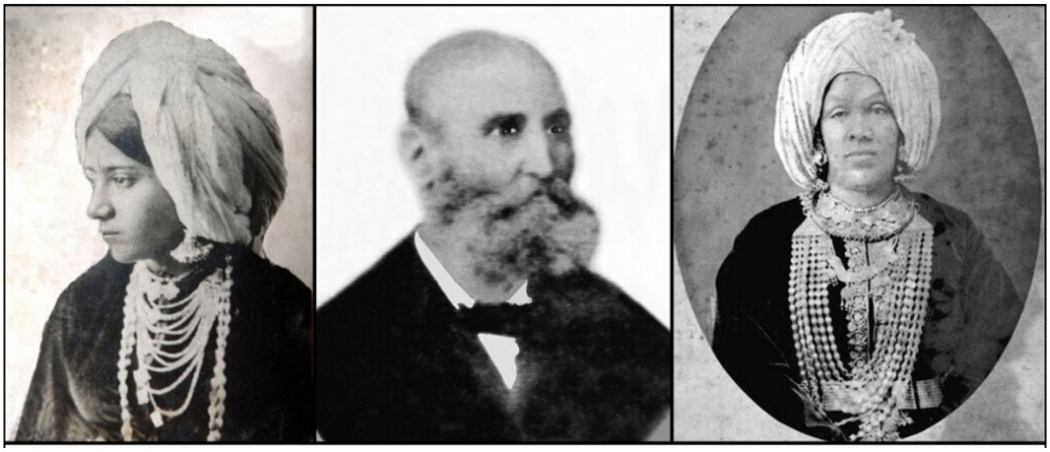

टिहरी-गढ़वाल के राजा सुदर्शन शाह से विल्सन ने जंगलों से पेड़ काटने की अनुमति ली और इस तरह उसने समृद्धि का नया द्वार अपने लिए खोल लिया। विल्सन को 'रेंजर ऑफ द हिमालयाज़' भी कहा जाता था। उसके आलीशान जीवन के बारे में ब्रिटिश लेखक व कहानीकार रुडयार्ड किपलिंग ने लिखा था कि 'उसके जीने का शाही अंदाज़ राजाओं को भी ईर्ष्यालु बना देता।' किपलिंग ने विल्सन के जीवन पर आधारित एक कहानी भी लिखी थी, जिसका शीर्षक था 'द मैन हू वुड बी किंग'। वर्ष 1883 में 66 साल की उम्र में विल्सन की मृत्यु हो गई। विल्सन की मृत्यु के लगभग 130 वर्षों बाद रॉबर्ट हचिसन ने उसकी जीवनी लिखी, जिसका शीर्षक है, 'द राजा ऑफ हरसिल : द लीजेंड ऑफ फ्रेडरिक 'पहाड़ी' विल्सन'।

राहुल सांकृत्यायन और बलिया में भोजपुरी सम्मेलन (1948)

वर्ष 1948 में भोजपुरी सम्मेलन का आयोजन बलिया में हुआ, जिसकी अध्यक्षता महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने की। 4 अप्रैल, 1948 को आयोजित हुए इस सम्मेलन में राहुल सांकृत्यायन के साथ भोजपुरी भाषा और साहित्य के अधिकारी विद्वान डॉ. उदयनारायण तिवारी ने भी भाग लिया। बलिया के भूगोल के बारे में राहुल सांकृत्यायन अपनी आत्म-कथा 'मेरी जीवन-यात्रा' में लिखते हैं 'बलिया वस्तुतः शहर नहीं, एक बड़ा-सा गाँव है। गंगा नातिदूर बहती है, और धार को कोई बाँध नहीं है, गाँव बिलकुल गंगा पर निर्भर हैं। टोंस जो यहाँ सरजू (छोटी) कही जाती है, बलिया के पास बहती है। वस्तुतः बलिया के कटने का डर सरजू से ही है।' इस यात्रा के दौरान राहुल जी बलिया के जिला-बोर्ड के सेक्रेटरी श्यामसुंदर उपाध्याय के यहाँ ठहरे।

उल्लेखनीय है कि 1947 में राहुल सांकृत्यायन बंबई में हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता कर चुके थे। 1948 के भोजपुरी सम्मेलन के बारे में राहुल ने लिखा है कि सम्मेलन के दौरान उन्हें बार-बार चित्तू पांडे की याद आती थी। इसी सम्मेलन में भोजपुरी प्रांत निर्माण का प्रस्ताव भी पास किया गया। इसी संदर्भ में राहुल जी की टिप्पणी है : 'तीन करोड़ भोजपुरी भाषी दो-दो प्रान्तों में बंटे रहें, और उनकी भाषा की कोई कदर न हो, यह दुख की बात थी। लेकिन आजकल जनता और उसकी भाषा की पूछ भला दिल्ली के देवताओं के दरबार में हो सकती थी?' पर राहुल सांकृत्यायन नाउम्मीद नहीं होते और आशा जताते हैं कि 'जनता का दिन लौटेगा जरूर'। भोजपुरी सम्मेलन में हुए कवितापाठ में उन्होंने डॉ. रामविचार पांडे और भोजपुरी के अन्य युवा कवियों की कविताओं को खुले मन से सराहा।

इसी दौरान राहुल सांकृत्यायन बलिया के 'चलता पुस्तकालय' में भी गए। जिसके बारे में उन्होंने लिखा है : 'चलता पुस्तकालय में पुस्तकें तो तीन हजार ही थीं, जिनका उपयोग बहुत अच्छी तरह किया जाता था। वह बराबर घूमती रहती थीं। पुस्तकालय ने अपना मकान भी बना लिया, आशा है, वह तेजी से बढ़ेगा।'

बता दें कि बलिया स्थित ‘चलता पुस्तकालय’ की स्थापना वर्ष 1942 (विक्रम संवत 1999) में हुई थी। इसकी स्थापना में ‘बलिया हिन्दी प्रचारिणी सभा’ ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिसकी स्थापना 1923 ई. (वि. सं. 1980) में हुई थी। चलता पुस्तकालय की स्थापना में बलिया के जिन लोगों ने प्रमुख भूमिका निभाई, वे थे : काशीनाथ मिश्र, विश्वनाथ पाण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, महादेव प्रसाद, शिवराम गोपीराम, विष्णुचंद रौनियार, रामसिंहासन मिश्र, केदारनाथ सिन्हा, हरिकृष्ण राय, कविलास चतुर्वेदी और बालगोविंद राम जी ‘निषाद’ आदि।

उल्लेखनीय है कि राहुल जी ने स्वयं भी भोजपुरी में आठ नाटक लिखे थे, जो निम्न हैं : नइकी दुनिया, मेहरारून के दुर्दशा, जपनिया राछछ, जरमनवा के हार निहचय, देस रच्छक, ढुनमुन नेता, ई हमार लड़ाई, जोंक।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन की जापान-यात्रा

बीसवीं सदी के आरंभ से ही हिन्दी के लेखकों ने भारत समेत एशिया, यूरोप और अमेरिका के दूसरे देशों के इतिहास, समाज और संस्कृति के बारे में लिखना आरंभ कर दिया था। इन देशों में जापान भी शामिल था। जहाँ एक ओर महेन्दु लाल गर्ग और रामनारायण मिश्र सरीखे लेखकों ने जापान के इतिहास और भूगोल के बारे में लिखा। वहीं आगे चलकर राहुल सांकृत्यायन, भदंत आनंद कौसल्यायन, रामकृष्ण बजाज आदि ने जापान यात्रा के विवरण लिखे। राहुल सांकृत्यायन ने 1935 में सम्पन्न हुई जापान-यात्रा के बारे में अपनी किताब 'जापान' में विस्तार से लिखा है। यह किताब 1936 में छपरा के 'साहित्य सेवक संघ' ने प्रकाशित की थी। राहुल जी की जापान-यात्रा से जुड़े लेख सरस्वती, विशाल भारत, विश्वामित्र, चाँद, सुधा और माधुरी सरीखी हिंदी की पत्रिकाओं में भी छपे थे। अपनी जापान यात्रा से पूर्व राहुल नेपाल, लंका, तिब्बत, इंग्लैंड समेत यूरोप के दूसरे देशों की यात्रा भी कर चुके थे।

जापान में राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन ने अपनी आत्मकथा 'मेरी जीवन-यात्रा' में जापान यात्रा का जो विवरण दिया है। उसके अनुसार, वे अप्रैल 1935 में कलकत्ता से पानी की जहाज से जापान के लिए रवाना हुए। रंगून, पेनाङ्, सिंगापुर, हांगकांग, शंघाई होते हुए वे मई के आरंभ में जापान पहुंचे। सबसे पहले वे जापान के क्यूशो द्वीप स्थित मोजी शहर में पहुंचे। जापान के समाज-संस्कृति, पहनावे, खान-पान, परिवार की संरचना, वास्तुकला के बारे में राहुल सांकृत्यायन ने विस्तार से लिखा है।

मोजी से राहुल जापान के एक अन्य शहर कोबे के लिए रवाना हुए, जहाँ उन्हें भागलपुर के उनके मित्र आनंद मोहन सहाय मिले जो उनकी जापान-यात्रा के हमसफ़र रहे। आनंद मोहन से उनका परिचय असहयोग आंदोलन के दिनों में हुआ था। तब कुछ समय के लिए आनंद मोहन सहाय

कांग्रेस के प्रसिद्ध नेता और स्वाधीन भारत के पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के निजी सचिव भी रहे थे।

राहुल सांकृत्यायन कोबे से ओसाका होते हुए होरियोजी का बौद्ध विहार देखने गए। औद्योगिक शहर ओसाका को राहुल जी ने 'जापान का लंकाशायर-मानचेस्टर' कहा है। बता दें कि होरियोजी के काष्ठ निर्मित बौद्ध विहार का निर्माण 607 ई. में जापान के शासक शोतोकु ने कराया था। यहीं से राहुल सांकृत्यायन चुगुजी और यूमीदोनो के बौद्ध विहारों में भी गए।

होरियोजी विहार के बारे में राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है : 'होरियोजी के मकानों, मंदिरों और मूर्तियों में जापानी संस्कृति का इतिहास भरा पड़ा हुआ है। यहाँ के मंदिर अधिकतर लकड़ी के हैं और उनमें से सबसे पुराना आज से चौदह सौ वर्ष पहले का बना हुआ है। प्रधान मंदिर की दीवारों पर अजंता जैसे चित्र हैं। बोधिसत्वों की मूर्तियाँ तो कला के अद्भुत नमूने हैं। मूर्तियाँ ही नहीं, चित्रपटों और वाद्यों का भी यहाँ अच्छा संग्रह है।' जापान के लोगों की वेश-भूषा के बारे में राहुल जी ने लिखा है कि जापानी पुरुष अधिकांश कोट-पतलून पहने थे, लेकिन स्त्रियाँ सभी किमोनो (लंबा चोगा) और सुंदर कमरपट्टी में थीं।

7 मई 1935 को होरियोजी से राहुल क्योतो के लिए रवाना हुए, जो न सिर्फ उन्नीसवीं सदी तक जापान की राजधानी रहा था, बल्कि सही अर्थों में आज भी जापान की सांस्कृतिक राजधानी है। वहाँ उन्होंने ओतानी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. सुजुकी के परिवार से मुलाक़ात तो की ही, साथ ही वे बौद्ध दैनिक 'चुमाईलिप्पो' के कार्यालय भी गए। अपनी इस यात्रा में राहुल रिश्शो के बौद्ध विश्वविद्यालय, थैसो और ओसाका के विश्वविद्यालयों में भी गए। जहाँ वे प्रो. फूचीदा, बोगिहारा और किमूरा, स्थविर कितागावा जैसे बौद्ध दर्शन के विद्वानों से मिले।

क्योतो के नैसर्गिक सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए हुए राहुल ने लिखा है कि 'क्योतो की तीन तरफ देवदार से ढँकी हरी-भरी पहाड़ियाँ हैं। यह बहुत ही रमणीय स्थान है, इसीलिए तो सिनेमा-फ़िल्म बनाने वालों ने तोकियो नहीं, क्योतो को अपनी राजधानी बनाया।' राहुल ने जापानियों के परिश्रम, ईमानदारी और उनकी कर्मठता की प्रशंसा करते हुए लिखा है : 'साधारण जापानी बड़े ही मधुर स्वभाव के होते हैं। जापान की साधारण जनता बहुत ईमानदार है। उनमें स्नेह और प्रेम है, जो विदेशी के लिए और भी बढ़ जाता है। किसी भी गाँव में जाने पर हरेक आदमी मुसाफिर की सेवा के लिए उत्सुक दिखाई देता है।'

राहुल ने आधुनिक जापान में सामंती वर्ग के प्रभुत्व तथा जापानी स्त्रियों, श्रमिकों और किसानों की दयनीय स्थिति का मुद्दा भी उठाया। जापानी समाज में तब मौजूद रही सामंती प्रवृत्ति के बारे में राहुल सांकृत्यायन ने लिखा :

> *आज जापान का शासन न सम्राट के हाथ में है, न बनियों के। हयाशी, अराकी, मिनामी और मसाकी यह चार फौजी जनरल और उनके सामंती वंश जापान के वास्तविक शासक थे। सामंतवाद वस्तुतः वहाँ से लुप्त हुआ ही नहीं। उसने पूँजीपतियों को बढ़ने दिया, पार्लियामेंट और चुनाव की व्यवस्था को भी स्वीकार किया, किन्तु वोट को नहीं, सेना को अंतिम निर्णायक बनाया।*

राहुल की इस यात्रा में उनके जापानी सहयोगी और मार्गदर्शक ब्योदोसान बराबर उनके साथ रहे। राहुलजी द्वारा जापानी गाँव में ठहरने की इच्छा जताने पर ब्योदोसान ने अपने गाँव नित्ता में राहुल जी को ठहराया था। अंततः अगस्त 1935 में राहुल सांकृत्यायन शिमोनोसेकी से कोरिया के लिए रवाना, जहाँ से वे मंचूरिया होते हुए सोवियत रूस गए।

जापानी भोजन, चाय और खेती

राहुल सांकृत्यायन ने जापानी भोजन और चाय का ज़िक्र भी अपनी आत्मकथा में किया है। जापान में खाने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले चॉपस्टिक का भी दिलचस्प विवरण राहुल ने दिया है। वे लिखते हैं : 'जापान में चीन की तरह दस-दस इंच पेंसिल जैसी दो लकड़ियों से खाने का रवाज है। मैंने जहाज में ही लकड़ियों से खाना सीख लिया था। वैसे तिब्बत में भी बड़े-बड़े घरों में लकड़ी या हाथीदांत की दो पेंसिलें दी जाती हैं। इस यात्रा में जापान पहुँचने से पहले लकड़ी से खाने में दक्ष होने का मैं निश्चय कर चुका था।' जापान के भोजन में मिर्च-मसाले और तेल-घी के न के बराबर इस्तेमाल को भी राहुल ने नोटिस किया। जापान में खाने की थाली में तनिक भी जूठा न छोड़ने की परंपरा को भी उन्होंने सराहा।

जापान में चाय के प्रचलन पर राहुल की टिप्पणी गौर करने लायक है :

> *चाय भी पहले दवाई के काढ़े जैसी मालूम होती, स्वाद कुछ कड़ुआ, न उसमें तिब्बत की तरह नमक-मक्खन न हिंदुस्तान की दूध-चीनी, न कश्मीर की तरह मिश्री-इलायची; बस खाली पानी में उबली पत्तियों का अर्क होता, जिसका रंग हरा-पीला होता है। चाय के प्याले भी हमारे यहाँ के प्यालों से छोटे होते हैं। कुछ दिन बाद इसमें भी स्वाद आने लगा। वस्तुतः भोजन या संगीत का स्वाद अधिकतर अभ्यास से पैदा होता है।*

जापान में कृषि के आधुनिक तौर-तरीक़ों और जापानी किसान के अथक परिश्रम से भी राहुल गहरे प्रभावित हुए। वे लिखते हैं : 'खेती करने में जापानी किसान आधुनिक चीजों का बहुत उपयोग करते हैं। खेती में खाद ख़ूब देते हैं। फ़ैक्टरियों की बनी खादों और कच्चे पाखाने को भी डालते हैं। हमारे किसानों से वह चौगुना-पंचगुना फसल पैदा करते हैं। किसान खेतों में मशीनों का भी इस्तेमाल करते हैं। ख़ासकर दँवाई में पैर से और तेल के इंजन से चलने वाली मशीनों को इस्तेमाल करते हैं।'

‘तुम्हारी क्षय’ : राहुल सांकृत्यायन

‘बाइसवीं सदी’, ‘दिमागी गुलामी’ और ‘भागो नहीं दुनिया को बदलो’ की तरह ही ‘तुम्हारी क्षय’ भी राहुल सांकृत्यायन की अत्यंत प्रभावशाली पुस्तक है। कुल छह अध्यायों में बंटी इस किताब में राहुल समाज, धर्म, भगवान, जात-पाँत, और पूँजीपतियों और महाजनी व्यवस्था रूपी जोंकों के क्षय की बात करते हैं। राहुलजी ज़ोर देकर कहते हैं कि ‘समाज का अपने भीतर के व्यक्तियों के प्रति न्याय करना प्रथम कर्तव्य है। न्याय का मतलब यह होना चाहिए कि हर एक व्यक्ति अपने श्रम के फल का उपयोग कर सके। लेकिन आज हम उलटा देखते हैं।’

रोटी, कपड़ा और मकान को वे वास्तविक धन के रूप में देखते हैं। किसान और मजदूर की कमाई पर अधिकार जताने वाले जमींदार, महाजन, मिल-मालिक, बड़ी तनखाहों वाले नौकर, पुरोहित वर्ग को वे जोंक की संज्ञा देते हैं। समाज, नैतिकता और धर्म के नाम पर लगाई जाने वाली तमाम बंदिशों के बारे में राहुलजी ने बेबाकी से कहा कि ‘समाज की बेड़ियाँ जेलखाने की बेड़ियों से भी सख़्त हैं। उन्हें आँखों से नहीं देखा जा सकता, लेकिन जहां समाज के कानून के खिलाफ – चाहे वह कानून सरासर अन्याय पर ही अवलंबित क्यों न हो- कोई बात हुई कि समाज हाथ धोकर पीछे पड़ जाता है।’

बाहर से धर्म का ढोंग, सदाचार का अभिनय, ज्ञान-विज्ञान का तमाशा कर भीतर से जघन्य, कुत्सित कर्म करने वाले समाज को धिक्कार बताते हुए उन्होंने ऐसे समाज के सर्वनाश की कामना की। प्रतिभाओं की उपेक्षा करने वाले और प्रतिभाओं के गले पर छुरी चलते देखकर खिन्न न होने वाले समाज की “क्षय हो”, इसकी भी उन्होंने कामना की।

धर्मों में व्याप्त असमानताएं और उनसे उपजने वाले वैरभाव को लक्ष्य करते हुए ही राहुल ने लिखा कि “मज़हब तो है सिखाता आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का खून पीना”। उनके अनुसार, खून चूसने वाली जोंकों की स्वार्थ-रक्षा ही मानो इन धर्मों का कर्तव्य है।

उन्होंने स्पष्ट कहा कि अज्ञान का दूसरा नाम ही ईश्वर है। हम अपने अज्ञान को साफ स्वीकार करने में शर्माते हैं, अतः उसके लिए संभ्रांत नाम ‘ईश्वर’ ढूंढ निकाला गया है। ईश्वर-विश्वास का

दूसरा कारण मनुष्य की असमर्थता और बेबसी है। सदाचार और थोथी नैतिकता के पाखंड को उधेड़ते हुए राहुल ने कहा कि सदाचार में जो जितना ही पतित है, वह उतना ही अधिक सुंदर लच्छेदार शब्दों में उस पर व्याख्यान दे सकता है।

उनका मानना था कि हमारी राजनीतिक संस्थाएं असत्य-प्रचार के सबसे बड़े अड्डे हैं। अपने स्वार्थ के लिए झूठ बोलकर दूसरे को धोखा देना हर एक राष्ट्र और राजनीतिज्ञ अपना परम कर्तव्य समझता है। न्याय सस्ता और सुलभ नहीं है, बल्कि जबर्दस्त शत्रु के मुक़ाबले में वह दुनिया की सबसे महँगी चीज है।

राहुलजी ने इतिहासाभिमान और पाखंड को पोषण देने वाली संस्कृति की क्षय की भी बात कही और लिखा : 'इतिहास-इतिहास, संस्कृति-संस्कृति बहुत चिल्लाया जाता है। मालूम होता है, इतिहास और संस्कृति सिर्फ मधुर और सुखमय चीजें थीं।... हमारा इतिहास तो राजाओं और पुरोहितों का इतिहास है जो कि आज की तरह उस जमाने में भी मौज उड़ाया करते थे।' उन्होंने इतिहास में वीरपूजा की भी कड़ी आलोचना की। उनका कहना था कि हिंदुस्तानी जाति एक है। सारे हिंदुस्तानी, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, बौद्ध हों या ईसाई मज़हब के मानने वाले हों या लामजहब; उनकी एक जाति है – हिंदुस्तानी, भारतीय।

किसान आंदोलन और राहुल सांकृत्यायन

हथकड़ी पहने राहुल सांकृत्यायन की यह ऐतिहासिक तस्वीर अमवारी किसान सत्याग्रह में उनकी गिरफ्तारी के बाद ली गई थी। जब उन्हें छपरा जेल से पेशी के लिए हथकड़ी पहनाकर सीवान ले जाया जा रहा था, तभी यह तस्वीर अप्रैल 1939 में ली गई थी। छपरा जेल में ही रहते हुए राहुलजी ने अपनी प्रसिद्ध किताब 'तुम्हारी क्षय' लिखी थी। जिसमें उन्होंने किसान-मजदूर एकता की बात करते हुए पूँजीपतियों, जमींदारों और महाजनों के साथ रूढ़िवादी समाज और दक़ियानूसी परम्पराओं के क्षय की कामना की थी।

वर्ष 1938 में तिब्बत की अपनी चौथी यात्रा से लौटने के बाद राहुल सांकृत्यायन ने राजनीति में फिर से सक्रिय हुए। उन्होंने लिखा कि 'मैं पहले भी राजनीति में अपने हृदय की पीड़ा दूर करने आया था। गरीबी और अपमान को मैं भारी अभिशाप समझता था। असहयोग के समय भी मैं जिस स्वराज्य की कल्पना करता था, वह काले सेठों और बाबुओं का राज नहीं था। वह राज था किसानों और मजदूरों का क्योंकि तभी गरीबी और अपमान से जनता मुक्त हो सकती थी।'

इस दौरान कलकत्ता में राहुल जी सोमनाथ लाहिड़ी, भवानी सेन और मुजफ्फर अहमद जैसे साम्यवादी नेताओं से मिले। बाद में वे पटना से होकर छपरा गए। और फिर शुरू किया उन्होंने गाँव-गाँव घूमकर किसानों-मजदूरों को संगठित करने का काम। उसी समय छपरा में किसान कार्यकर्ताओं का ऐतिहासिक सम्मेलन हुआ। जिसमें अमवारी गाँव से आए किसानों ने राहुल जी से कहा कि उनके खेत छीन लिए गए हैं और उनके ऊपर रोज हो रहे अत्याचारों की सुनवाई कहीं नहीं हो रही। ये किसान 'हरी-बेगारी' प्रथा का विरोध कर रहे थे, जिसके अंतर्गत किसानों को अपने हल-बैल से पहले जमींदारों के खेत को जोतना पड़ता था। कांग्रेस के नेता और प्रशासन भी किसानों की समस्या पर ध्यान नहीं दे रहे थे।

राहुल जी ने गाँव-गाँव घूमकर वस्तुस्थिति का अध्ययन किया। इन यात्राओं में उनके साथ नागार्जुन भी थे। किसान सत्याग्रह की शुरुआत राहुल जी ने हथुआ राज से करने की सोची। लेकिन बाद में

किसान सत्याग्रह की शुरुआत अमवारी से की गई। अमवारी में धारा 144 लगाए जाने की अफवाह उड़ाए जाने के बावजूद राहुल किसान सत्याग्रहियों के साथ फरवरी 1939 में अमवारी गए। वहाँ के जमींदार ने किसान सत्याग्रहियों से निपटने के लिए पचासों लठैत और दो हाथी जमा कर रखे थे।

राहुल जी के नेतृत्व में किसानों ने उस खेत से ऊख काटना शुरू किया। जिस पर अमवारी के जमींदार ने अवैध ढंग से कब्जा कर लिया था। लठैतों की परवाह किए बगैर राहुल जी के नेतृत्व में किसानों ने ऊख काटना शुरू किया। जमींदार ने अपने लठैतों को राहुल और नागार्जुन पर लाठी चलाने के लिए उकसाया, लेकिन उन्होंने भिक्षुवेश धारी राहुल और नागार्जुन पर लाठी चलाने से इंकार कर दिया। पुलिस भी जमींदार का ही साथ दे रही थी। राहुल जी द्वारा ऊख काटे जाने पर थानेदार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उसी समय जमींदार के महावत ने राहुल जी के सर पर लाठी से प्रहार किया, जिससे उनका सर फट गया और खून की धारा बने लगी।

बाद में, राहुल और नागार्जुन समेत दो दर्जन किसान सत्याग्रहियों को गिरफ्तार कर सीवान जेल में बंद कर दिया गया। जबकि राहुल पर हमला करने वाले महावत को छोड़ दिया गया। राहुल जी की गिरफ्तारी ने जनता में आक्रोश भड़काया और जब उन्हें सीवान से छपरा ले जाया जा रहा था, तब सड़क पर सैकड़ों लोग ‘इंकलाब ज़िंदाबाद’, ‘किसान राज कायम हो’ और ‘जमींदारी प्रथा का नाश हो’ के नारे लगा रहे थे। बाद में राहुल जी छितौली में हुए किसान सत्याग्रह का भी नेतृत्व किया।

राहुल सांकृत्यायन और नेपाल

नेपाल के प्रसिद्ध साहित्यकार धर्मरत्न यमि के साथ राहुल सांकृत्यायन की यह तस्वीर जनवरी 1953 में राहुल जी की नेपाल-यात्रा के दौरान ली गई थी। राहुल जी की यह यात्रा इस अर्थ में भी विशिष्ट थी कि इस यात्रा के दौरान राहुल जी नेपाल के महाकवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा के साथ अन्य प्रमुख नेपाली साहित्यकारों से भी मिले थे। देवकोटा का फक्कड़ व्यक्तित्व राहुल जी को निराला की याद दिलाता रहा। राहुल जी ने 'मेरी जीवन-यात्रा' में लिखा भी है कि 'देवकोटा को देखकर मुझे बार-बार निरालाजी याद आते थे – वैसा ही अकृत्रिम सौहार्द्र और वैसी ही काव्य-प्रतिभा। ख़ुद भी अपनी कृतियों की सुरक्षा की परवाह नहीं करते। लिखते-फाड़ते-भूलते उन्हें देर नहीं लगती।'

इसी यात्रा में राहुल जी की मुलाक़ात नेपाल के प्रमुख साहित्यकारों जैसे बालकृष्ण सम, बालचन्द्र शर्मा, जनकलाल शर्मा, केदारनाथ व्यथित, महानन्द सापकोटा, चित्रधर उपासक आदि से हुई। 'नेपाली शिक्षा परिषद' की सभा में दिए भाषण में राहुल जी ने नेपाल की बहुभाषिकता पर ज़ोर दिया था। नेपाली के साथ-साथ उन्होंने नेवार और गुरुंग जैसी भाषाओं के महत्त्व पर भी ज़ोर देते हुए कहा था : 'यदि नेपाल के लोगों को जल्दी से जल्दी साक्षर करना, तो प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम उनकी भाषाओं को रखना होगा।' राहुल जी ने नेपाली साहित्य सम्मेलन में भी भाग लिया था। इस यात्रा में कमला जी भी बराबर राहुल सांकृत्यायन के साथ रहीं।

उल्लेखनीय है कि वर्ष 1953 में राहुल जी ने 'नेपाल' शीर्षक से एक पुस्तक भी लिखी थी। नेपाल से भारत लौटने के बाद राहुल जी ने मई-जुलाई 1953 में सस्ता साहित्य मण्डल की मासिक पत्रिका 'जीवन-साहित्य' में तीन लेख धर्मरत्न यमि के व्यक्तित्व, उनकी राजनीतिक गतिविधियों और कृतित्व के बारे में लिखे थे। संयोग नहीं कि धर्मरत्न यमि और राहुल के जीवन में कई समानताएँ दिखाई देती हैं। प्रतिबद्ध साहित्यकार होने के साथ ही दोनों ने अपने राजनीतिक सरोकारों के लिए राजनीतिक संघर्षों में भाग लेने और जेलयात्राएँ करने से भी कभी गुरेज नहीं किया।

राहुल जी की तरह ही धर्मरत्न यमि भी बौद्ध थे, लेकिन मार्क्सवाद और साम्यवाद से गहरे प्रभावित थे। राहुल और धर्मरत्न दोनों ने ही जेल में रहते हुए कालजयी ग्रंथ लिखे। धर्मरत्न यमि की अनेक कालजयी पुस्तकें यथा 'संदेशया लिसल' (नेवार भाषा का प्रसिद्ध खंड-काव्य), 'अर्हत नन्द' और भगवान बुद्ध की जीवनी 'जगत ज्योति' जेल में रहते हुए ही लिखी गईं। राणाशाही के विरुद्ध संघर्ष की योजना तैयार करते हुए धर्मरत्न यमि 1939 में इलाहाबाद में जवाहरलाल नेहरू और पटना में रामवृक्ष बेनीपुरी से भी मिले थे, जो उस समय समाजवादी पत्रिका 'जनता' के संपादक थे।

बौद्ध धर्म व दर्शन में गहरे अनुराग और अपनी घुमक्कड़ वृत्ति के चलते राहुल जी ने नेपाल की अनेक यात्राएँ की थीं। देखें तो ये नेपाल यात्राएँ उनकी तिब्बत-यात्रा के एक अनिवार्य पड़ाव की तरह जान पड़ती हैं। राहुल जी की पहली नेपाल-यात्रा वर्ष 1923 में हुई। इस यात्रा के दौरान राहुल जी थापाथल्ली मठ में रुके थे। जहाँ से उन्होंने पशुपतिनाथ, गुह्येश्वरी, महाबोधा, शिखरनारायण जैसे ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण किया। वहीं वे बौद्ध विद्वान वज्रदत्त वैद्य और रत्नबहादुर पंडित से भी मिले।

राहुल जी भारत-नेपाल-तिब्बत में व्यापार करने वाले नेवार व्यापारी धर्ममान साहू और उनके बेटे त्रिरत्नमान साहू के संपर्क में आए। अपनी तिब्बत यात्राओं में राहुल जी को धर्ममान साहू से समय-समय पर जो सहायता मिली थी, उसके लिए वे हमेशा उनके कृतज्ञ रहे। किन्तु इस पहली नेपाल यात्रा में उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण मुलाक़ात हुई राजगुरु पंडित हेमराज शर्मा से। पं. हेमराज शर्मा से राहुल जी की यह भेंट आगे चलकर तीस दशक लंबी सहयोग व मैत्री की बौद्धिक यात्रा में

परिणत हुई। ‘प्रमाणवार्तिक’ समेत अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की पांडुलिपियाँ भी राहुल जी को हेमराज शर्मा से ही मिली थीं और बौद्ध दर्शन के अनुशीलन हेतु ज़रूरी मार्गदर्शन भी। वर्ष 1929 में हुई अपनी सवा बरस की तिब्बत यात्रा से पूर्व राहुल जी ने कुछ महीने नेपाल में किंदोल विहार और उसके निकट अज्ञातवास में भी गुजारे थे। उसी यात्रा में वे डुक्पालामा से भी मिले थे। कहना न होगा कि राहुल जी की जीवन-यात्रा भारत-नेपाल मैत्री का सुनहरा अध्याय है।

राहुल सांकृत्यायन और मोमो

मोमो के समृद्ध इतिहास से अपरिचित होने के कारण मुझे लगता था कि मोमो फास्ट फूड की फैलती-बढ़ती दुनिया का एक नया सदस्य है। जो गज़ब की तेजी से उत्तर भारत के शहरी और ग्रामीण इलाकों में हद दर्जे की लोकप्रियता हासिल कर चुका है। पर मेरी यह गलतफहमी दूर हुई राहुल सांकृत्यायन की आत्मकथा पढ़ते हुए। राहुलजी ने लिखा है कि वे भी मोमो के मुरीद हैं। अपनी आत्मकथा 'मेरी जीवन-यात्रा' के तीसरे खंड में उन्होंने पहले-पहल मोमो का उल्लेख किया है। वर्ष 1949 में पश्चिम बंगाल के हिल-स्टेशन कलिम्पोंग में बिताए गए समय का ब्यौरा का देते हुए एक जगह वे लिखते हैं : 'उसी दिन (यानी 16 जुलाई 1949) कजाकों की बनाई मोमो आई, और इतनी अधिक कि हम लोग उसे खा नहीं सके। मोमो समोसे की तरह आटे के भीतर गोश्त का कीमा डालकर भाप में उबाला चीनी भोजन है। मुझे यह बहुत प्रिय है।'

मोमो का दूसरा उल्लेख उनकी आत्मकथा के चौथे खंड में मिलता है। जो 1951 में उनके मसूरी प्रवास के समय का है। वे लिखते हैं : 11 जून को किशन सिंह के यहाँ मोमो खाने और तिब्बती चाय पीने की दावत थी। चार मील जाना पड़ता था। लेकिन वहाँ जाने से मेरा मन कभी नहीं हिचकता था... मोमो की शौकीन मेरी तरह कमला (सांकृत्यायन) भी हैं। कलिम्पोंग में बहुत-से चीनी और तिब्बती रेस्तोराँ हैं, जिनमें यह कई तरह की बना करती है। कमला ने बचपन से ही उन्हें खाया था।

मोमो मूलतः तिब्बती व्यंजन है, जिसे वहाँ मोग-मोग कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि वहाँ से लाकर नेपाल में मोमो को प्रचलित करने का श्रेय नेवार समुदाय के व्यापारियों को है। नेपाल से यह व्यंजन भारत के निकटवर्ती इलाकों में, ख़ासकर हिमालयी क्षेत्रों में लोकप्रिय हुआ और आज समूचे उत्तर भारत में इसकी बढ़ती लोकप्रियता का कोई जोड़ीदार नहीं है। मोमो से मिलते-जुलते व्यंजन चीन (डिम-सम, बाओजी, जियाओजी), जापान (ग्योजा), कोरिया (मांडू) और मंगोलिया (बुज) में भी काफी लोकप्रिय हैं।

राहुल सांकृत्यायन और सिनेमा

राहुल सांकृत्यायन ने अपनी आत्मकथा ‘मेरी जीवन-यात्रा’ में अपनी देखी हुई फ़िल्मों के बारे में जगह-जगह जो टिप्पणियाँ लिखी हैं। वे उनकी सुलझी हुई कला-दृष्टि और सिनेमा के प्रति उनके दृष्टिकोण से हमें परिचित कराती हैं। बीसवीं सदी के चौथे-पांचवें दशक में जब राहुल सांकृत्यायन फ़िल्म संबंधी ये टिप्पणियाँ लिख रहे थे, तब तक हिंदी में फ़िल्म-समीक्षा अथवा फ़िल्म संबंधी लेखन अभी अपने शुरुआती दौर में ही था। ‘रंगभूमि’, ‘चित्रपट’ और ‘मनोरंजन’ जैसी कुछेक फ़िल्म पत्रिकाएँ थोड़े समय के लिए अस्तित्व में ज़रूर रहीं। साथ ही, ‘सुधा’, ‘सरस्वती’ और ‘चाँद’ जैसी हिंदी की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में भी फ़िल्मों संबंधी लेख प्रकाशित होते थे। किन्तु हिंदी में फ़िल्म संबंधी अभिरुचियों, उससे जुड़े अनुभवों को आकार देने में जिस ‘माधुरी’ पत्रिका का सबसे अहम योगदान रहा, वह वर्ष 1964 में छपनी शुरू हुई यानी राहुल जी के निधन के साल भर बाद।[i] इसलिए भी हिंदी फ़िल्म अध्ययन की विकास प्रक्रिया को समझने में राहुल सांकृत्यायन द्वारा की गई फ़िल्म संबंधी इन टिप्पणियों की अहमियत बढ़ जाती है। वर्ष 1935 से 1947 के बीच सम्पन्न हुईं अपनी तीन सोवियत-यात्राओं के दौरान राहुल जी ने फिल्मों के साथ-साथ रूसी नाटक, बैले और ओपेरा भी देखे और उनसे प्रभावित हुए बिना न रहे। सोवियत रंगमंच और सिनेमा के यथार्थवादी तेवर ने ख़ास तौर पर राहुल सांकृत्यायन का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। इसी तरह सिनेमा संबंधी राहुल जी की टिप्पणियों की दूसरी खासियत ये है कि इनसे हमें बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक में सोवियत रूस और हिंदुस्तानी सिनेमा के तुलनात्मक अध्ययन में भी मदद मिलती है।

सोवियत सिनेमा का अनुभव

अपनी सोवियत यात्रा के दौरान राहुल जी ने कई सोवियत फ़िल्में देखीं। भारतीय फ़िल्मों से उनकी तुलना करने पर वे सोवियत फ़िल्मों को तकनीक, प्रस्तुति और विषयवस्तु के मामले में भारतीय फ़िल्मों से कहीं आगे पाते थे। इस संदर्भ में उनकी टिप्पणी गौरतलब है : ‘सोवियत फ़िल्म देखने से मुझे उतना वैराग्य नहीं होता था, जितना भारत के फ़िल्मों को। यहाँ तो बरस में कभी एक बार

गला दबाने पर यदि जाता भी हूँ तो ऊबकर बीच में ही चले आने की इच्छा हो जाती है। सोवियत के फिल्म केवल यौन-आकर्षण को लेकर नहीं बनते, इसका यह मतलब नहीं कि उनमें स्त्री-पुरुषों के प्रेम-संबंध को छिपाने की कोशिश की जाती है। तो भी उतना ही रहता, जितना कि दाल में नमक।'[ii] वर्ष 1927 में सोवियत रूस की यात्रा करने वाले जवाहरलाल नेहरू भी सोवियत फ़िल्मों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे और सोवियत रूस के बारे में लिखी पुस्तक में उन्होंने सोवियत सिनेमा की प्रशंसा की है। 'द लास्ट डेज़ ऑफ पेट्रोग्राद' फ़िल्म देखने के बाद नेहरू ने लिखा था, 'रूसी फ़िल्मकार अपनी फ़िल्मों की खूबसूरती और कलात्मक उत्कृष्टता के लिए जाने जाते हैं। लेकिन दुर्भाग्य से हिंदुस्तान में हमें रूसी फ़िल्मों को देखने का मौक़ा नहीं मिलता। हम तो अमेरिका के हॉलीवुड में बनी भौंडी और बचकाना फ़िल्मों को ही देखने के लिए अभिशप्त हैं।'[iii]

सिनेमाघरों के बाबत लिखते हुए भी राहुल सांकृत्यायन ने सोवियत सिनेमाघरों को दर्शकों की सुविधाओं के लिहाज़ से हिंदुस्तानी सिनेमाघरों के मुक़ाबले कहीं बेहतर पाया। उनके अनुसार जहाँ हिंदुस्तान के सिनेमाघरों में निचले दो दर्जों के दर्शक आँख फोड़ने के लिए बैठाए जाते हैं, सोवियत सिनेमाघरों में वह जगह खाली रहती है। सोवियत रूस की अपनी दूसरी यात्रा के दौरान राहुल जी ने नवंबर 1938 में एक रूसी फ़िल्म 'पुगाचेफ' देखी। पावेल पेत्रोव-बाइतोव द्वारा निर्देशित यह फ़िल्म अठारहवीं सदी के रूस में जारशाही के खिलाफ़ वर्ष 1773-75 के दौरान बगावत का झंडा बुलंद करने वाले विद्रोही पुगाचेफ के जीवन पर आधारित थी। पुगाचेफ ने जारशाही के अत्याचारों के विरुद्ध हजारों किसानों को संगठित कर एक सशस्त्र दल कायम किया और जारशाही से लोहा लिया था। हालांकि बाद में उसे पकड़ कर मौत के घाट उतार दिया गया और जारशाही द्वारा विद्रोह का दमन कर दिया गया था। राहुल जी ने इस फ़िल्म की विषयवस्तु, कथानक और फिल्मांकन की खुलकर प्रशंसा की।

सोवियत फ़िल्मों में भी राहुल सांकृत्यायन विशेष रूप से उज़्बेकिस्तान, कजाकस्तान, अजरबैजान, मंगोलिया आदि मध्य एशियाई देशों की फ़िल्में पसंद करते थे। यहाँ तक कि अगर रोज एक एशियाई फ़िल्म देखनी हो तो भी इसके लिए वे खुशी से तैयार थे। ऐसी ही एक उज़्बेक फ़िल्म 'ताहिर और ज़ोहरा' देखने का उल्लेख उन्होंने 'मेरी जीवन-यात्रा' में किया है। मार्च 1946 में राहुल जी द्वारा देखी गई यह फिल्म एक ऐतिहासिक प्रेम कहानी पर आधारित थी। फ़िल्म के विषय में राहुल जी का मत है कि 'कथानक और अभिनय की दृष्टि से फ़िल्म बड़ी सुंदर थी, लेकिन सोवियत फ़िल्मों में जो विशाल प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलते हैं, वह इसमें नहीं थे – न वह अनंत बयाबान और पर्वतमाला, न नदी की विस्तृत उपत्यका, न नगर के ही हर अंग का प्रदर्शन।'[iv] यह फ़िल्म देखने के ठीक अगले ही दिन राहुल जी ने एक कजाक फ़िल्म देखी, 'अवाय के गीत' (पीस्नेे अबायेफ़)।

कजाक भाषा के महान साहित्यकार अबायेफ़ (1845-1904) के जीवन पर आधारित फ़िल्म 'पीस्ने अबायेफ़' कजाक समाज और संस्कृति, संगीत और नृत्य का गहन परिचय देती है। अबायेफ़ के विद्याप्रेम ने उसे कजाकस्तान के विभिन्न इलाक़ों में बसे हुए रूसी विद्वानों के संपर्क में लाया, जिनसे उसने रूसी भाषा व साहित्य का गहरा अध्ययन किया। अबायेफ़ ने अपनी सारी रचनाएँ अपनी मातृभाषा में लिखी थीं। किन्तु कजाक समाज उस वक़्त पर्याप्त साक्षर नहीं था, जिसकी वजह से अबायेफ़ को अपने जीवनकाल में समुचित सम्मान न मिल सका। लेकिन सोवियत रूस में दिवंगत अबायेफ़ की कृतियों और उसकी विद्वत्ता को सम्मान मिलना आरंभ हुआ। राहुल जी ने अबायेफ़ की सराहना करते हुए लिखा है कि 'आज वह कजाकस्तान का वाल्मीकि और अश्वघोष, कालिदास और बाण है।'

'पीस्ने अबायेफ़' फ़िल्म में न सिर्फ़ कजाक कवि अबायेफ़ के जीवन में आने वाले उतार-चढ़ाव को दर्शाया गया था बल्कि कजाकस्तान के घुमंतू समाजों, उनके सामाजिक संगठन, उनकी जीवनचर्या को भी बख़ूबी प्रदर्शित किया गया था। अकारण नहीं कि राहुल जी को यह फ़िल्म बड़ी ही सुंदर और ज्ञानवर्धक लगी। फ़िल्म में दर्शाए गए प्राकृतिक दृश्यों की खूबसूरती पर टिप्पणी करते हुए राहुल जी ने लिखा कि 'प्राकृतिक दृश्य बड़े सुंदर थे, जिनको देखकर घर बैठे कजाकस्थली की सैर हो सकती थी। चरागाहों का बड़ा सुंदर दृश्य दिखलाया गया था। कजाकस्तान के पहाड़, नदियों की उपत्यकाएँ भी मनोहारिणी थीं।'[v] राहुल जी ने सोवियत फ़िल्मों की चर्चा करते हुए उनमें फिल्माए गए प्राकृतिक भूदृश्यों (लैंडस्केप) को बारंबार सराहा है। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि सोवियत सिनेमा में लैंडस्केप के इस्तेमाल के बारे में में रूसी फ़िल्मों की गंभीर अध्येता एमा विडिस का विचार है कि इसके जरिये सोवियत सिनेमा ने सोवियत अस्मिता के निर्माण के साथ-साथ सोवियत रूस की भौगोलिक संकल्पना, स्पेस और क्षेत्र की अवधारणा को भी रचने का काम किया।[vi]

अप्रैल 1946 में राहुल जी ने केंद्रीय लाल सेना के थिएटर में एक और रूसी फ़िल्म 'कतुजोफ' देखी। व्लादिमीर पेत्रोव द्वारा निर्देशित यह फ़िल्म रूसी सेनापति मिखाइल कतुजोफ (1745-1813) के जीवन पर आधारित थी, जिसने वर्ष 1812 में नेपोलियन की सेनाओं को रूस से खदेड़ने के अभियान का सफल नेतृत्व किया था। यह फ़िल्म नेपोलियन के समकालीन रूस का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करती थी। फ़िल्म में दर्शाए गए प्राकृतिक दृश्यों, फ़िल्म के संवाद के बारे में राहुल जी लिखते हैं 'जाड़े की हिमाच्छादित भूमि, पर्वत में दूर-दूर तक बसे गाँव, देवदार और भुर्ज के वृक्ष ही नहीं बल्कि बड़े-बड़े रुई के फाहों जैसी पड़ती बर्फ और सनसनाती झंझा को भी इस फ़िल्म में दिखलाया गया था। संवाद और भी कमाल का था। नेपोलियन की परेशानी और कष्ट को दिखलाया गया था लेकिन कहीं भी उसके अभिमानपूर्ण चेहरे को दीन नहीं होने दिया गया।' [vii] चूंकि 'कतुजोफ' एक ऐतिहासिक विषय पर बनी फ़िल्म थी, राहुल जी ने लक्षित किया कि फ़िल्म के निर्देशक ने यह सुनिश्चित किया था कि ऐतिहासिक या भौगोलिक अनौचित्य न रह जाए। इसके

लिए सैनिकों और सेनापतियों, नागरिकों और ग्रामीणों की पोशाक, फ़िल्म में दिखाए गए अस्त्र-शस्त्र सभी उस कालविशेष के अनुरूप ही प्रयोग में लाए गए थे।

भारतीय सिनेमा : राहुल सांकृत्यायन की दृष्टि में

उपर्युक्त संदर्भ में, अगर भारतीय फ़िल्मों की बात करें तो राहुल सांकृत्यायन ने ऐतिहासिक विषयवस्तु पर बनी भारतीय फ़िल्मों में कालदोष और अनैतिहासिक विवरणों और चित्रण को आड़े हाथों लिया। मसलन, जब राहुल जी नवंबर 1942 से मार्च 1943 के बीच बंबई में थे, तब उन्होंने कई फ़िल्में देखीं, मगर अधिकांश ने उन्हें निराश ही किया। एक ऐसी ही फ़िल्म थी रामेश्वर शर्मा द्वारा निर्देशित 'भक्त कबीर' जोकि वर्ष 1942 में रिलीज हुई थी। जनवरी 1943 में यह फ़िल्म देखने के बाद इसकी कमियों का उल्लेख करते हुए राहुल जी लिखते हैं : 'इतिहास और भूगोल के ऊपर दिल खोलकर छुरी चलाई गई है। नीरू को पाजामा पहनाया गया। आज भी बनारस की तरफ जुलाहों में बहुत कम ही पाजामा पहनते हैं। रामानन्द को घंटा डुलाने वाला मुछंदर बनाया गया। कबीर के समय कहाँ से लाकर काशिराज को बसा दिया। बनारस से पूछने की क्या ज़रूरत? भारतीय थैलीशाहों की राजधानी बंबई सबका काम दे सकती है। गाने-नाचने को दिखाकर जब पैसों के बटोरने में बाधा नहीं, तो मौज है और बातों को। तुकाराम के अभंग को राम-रहीम, कृष्ण-करीम कहकर गवाया। गोया कबीरपंथियों की खजड़ीवाली भजन बुरी थी।'[viii]

भारतीय फ़िल्मों में दिखने वाले हल्केपन और कला के इस प्रभावशाली स्वरूप के प्रति भारतीय फ़िल्म निर्माताओं की अगंभीरता की प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए राहुल सांकृत्यायन ने लिखा कि सोवियत फिल्में और नाटक 'हमारे यहाँ की तरह नहीं हैं कि अशोक के समय उस विक्रमशिला का भिक्षु पेश कर दिया जाय, जिस विक्रमशिला का अस्तित्व अशोक से ग्यारह शताब्दियों बाद हुआ। रेडियो नाटकों में कलिंग विजय के समय बारूद का धड़ाका दिखाया जाय, जिसको कि बाबर के आने से पहले हिंदुस्तान के लोग जानते नहीं थे। हमारा ही देश क्या इस विषय में पश्चिमी यूरोप और अमेरिका वाले भी अभी सोवियत रूस से बहुत पीछे हैं।'[ix] 1944 में अपनी दक्षिण भारत की यात्राओं के दौरान राहुल जी को इस बात का भी अहसास हुआ कि हिंदी फ़िल्में अहिंदीभाषी क्षेत्रों में हिंदी का प्रचार करने का एक महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली जरिया बन रही हैं।

सोवियत रूस जाने के लिए वीजा बनवाने और अपनी किताबों से जुड़े अन्य कार्यों को पूरा करने के लिए जब राहुल जी अप्रैल-मई 1944 में बंबई में ठहरे हुए थे। तब भी उन्होंने दो फ़िल्में देखीं, 'शुक्रिया' और 'ज़मीन'। उन्होंने इन दोनों फिल्मों के कथानक, अभिनय, फ़िल्मांकन का गहरा विश्लेषण किया। 'शुक्रिया' फ़िल्म हरनाम सिंह रवैल द्वारा निर्देशित थी। हरनाम सिंह ने अपने

सिनेमाई कैरियर की शुरुआत कोलकाता में निर्देशक केदार शर्मा के सहायक के रूप में की थी। उनके द्वारा निर्देशित कुछ अन्य फ़िल्में हैं : ज़िद (1945), झूठी कसमें (1948), दो बातें (1949), पॉकेटमार (1956) आदि।[x] 'शुक्रिया' फ़िल्म के बारे में राहुल जी की राय थी कि 'अभिनय अच्छा था इसमें संदेह नहीं, मगर सिर्फ़ गाने-नाचने और सौंदर्य प्रदर्शन के ही बल पर इस फ़िल्म को दर्शकों के मत्थे थोपा गया।' फ़िल्म के कथानक को उन्होंने बिलकुल विशृंखलित, निर्जीव और निरुद्देश्य बताया।

'शुक्रिया' के उलट राहुल जी को फ़िल्म 'ज़मीन' काफी अच्छी लगी। आनंद कुमार द्वारा निर्देशित इस फ़िल्म की प्रशंसा करते हुए राहुल जी ने लिखा कि 'इतने दिनों बाद यह एक हिंदी फ़िल्म आई है, जिसकी तारीफ़ कर सकते हैं। वार्तालाप कमाल का है, कौरवी उच्चारण लाने की कोशिश की गई है, उसमें सफलता मिली है। कथानक भी सुसंबद्ध है, गहराई है, अभिनय में जो कुछ है, ध्वनि उससे दूर तक जाती है।'[xi] उन्होंने फ़िल्म की नायिका दुर्गा खोटे के अभिनय की भी मुक्तकंठ से प्रशंसा की। उल्लेखनीय है कि वर्ष 1931 में बनी फ़िल्म 'फरेबी जाल' से अपने अभिनय कॅरियर की शुरुआत करने वाली अभिनेत्री दुर्गा खोटे (1905-1991) ने जीवन नाटक, इंकलाब, अमर ज्योति, पृथ्वी वल्लभ, तस्वीर, मुसाफ़िर, राज तिलक और मुग़ल-ए-आज़म सरीखी फ़िल्मों में अभिनय किया था। समाज-सुधारक अवन्तिकाबाई गोखले के विचारों से प्रभावित दुर्गा खोटे भारतीय जन नाट्य मंच (इप्टा) से भी जुड़ी रहीं।

फ़िल्म 'ज़मीन' में दर्शाए गए किसानों के बर्ताव को भी राहुल जी ने गंभीर और स्वाभाविक माना। फ़िल्म की कुछ सीमाओं के विषय में राहुल जी लिखा 'चीरहरण की जगह कोई दूसरी ग्रामीण मनोरंजन की चीज ला सकते थे। गाने अच्छे नहीं। फ़ोटोग्राफी भी दोषपूर्ण। योगी के अनुकूल भेष नहीं।'

रूस में रहते हुए राहुल जी को रूसी फिल्मों के हिंदी भाषांतर का काम भी सौंपा गया, लेकिन साहित्यिक कार्यों में व्यस्तता के कारण राहुल जी ने इस कार्य को पूरा करने में अपनी असमर्थता जताई थी। इस संदर्भ में वे लिखते हैं '15 अप्रैल 1947 को एक और भी काम हमारे पास आया। वह था रूसी फ़िल्मों का हिंदी भाषांतर करना। 'शपथ' फ़िल्म के सिनारियो को हमारे पास रूसी से हिंदी में तर्जुमा करने के लिए भेजा गया था। इसमें जितना अभिनय था, उतना वार्तालाप नहीं था। कुल 74 पृष्ठ की सामग्री रही होगी। फ़िल्म-विभाग ने इसके अनुवाद के लिए साढ़े चार हजार रूबल पारिश्रमिक देने के लिए लिखा था। खैर रूबल बुरे तो नहीं थे, किन्तु मुझे उनकी उतनी परवाह नहीं थी।'[xii]

राहुल सांकृत्यायन अगस्त 1947 में सोवियत रूस से भारत वापस लौटे। इसी दौरान वे बंबई में आयोजित हुए हिंदी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के सभापति भी रहे। फरवरी 1948 में राहुल सांकृत्यायन ने उदयशंकर की कलात्मक फ़िल्म 'कल्पना' लखनऊ में देखी। उल्लेखनीय है कि 'कल्पना' प्रसिद्ध भारतीय नर्तक और नृत्य-निर्देशक उदय शंकर (1900-1977) द्वारा निर्मित एकमात्र फ़िल्म है। इस फ़िल्म में उदय शंकर की पत्नी अमला शंकर मुख्य भूमिका में थीं। यद्यपि राहुल जी उदयशंकर की कलात्मकता और उनकी कला-दृष्टि के प्रशंसक थे, लेकिन 'कल्पना' फ़िल्म ने उन्हें निराश ही किया।

फ़िल्म 'कल्पना' पर उनकी टिप्पणी है, 'सर्वज्ञता के भ्रम ने इसे समाप्त कर दिया। उदयशंकर ने कलाकार उदयन को फ़िल्म की कथा का आधार बनाया, और कलाकार के लंबे जीवन को छोटी-छोटी झाँकियों से चित्रित करना चाहा। वह झाँकी इतनी कम थी कि जब तक उससे आदमी कुछ निष्कर्ष निकाले, उससे पहले ही वह खत्म हो जाती। फ़िल्म साधारण जनता के लिए तो लिखी ही नहीं गई थी, यदि मेरे जैसे दर्शक भी उसे नहीं पसंद कर पाए, तो उसकी असफलता निश्चित थी। यदि उन्होंने नवीन उदयन कथा की मोह को छोड़ नृत्य तथा संगीत की छोटी-छोटी भूमिकाओं को पेश किया होता, तो ज़रूर जनप्रिय होता और आर्थिक दृष्टि से भी बहुत सफल रहता।'[xiii]

राजकपूर की चर्चित फ़िल्म 'आवारा' वर्ष 1951 में रिलीज हुई। 'आवारा' की पटकथा लिखी थी, ख्वाजा अहमद अब्बास ने और इसके प्रमुख कलाकारों में राजकपूर के अलावा पृथ्वीराज कपूर, नरगिस, के.एन. सिंह और लीला चिटणीस भी थे। फ़िल्म का संगीत दिया था शंकर-जयकिशन

की प्रसिद्ध जोड़ी ने और गीत लिखे थे शैलेंद्र और हसरत जयपुरी ने। अगले साल जून के महीने में राहुल जी ने यह फ़िल्म मसूरी में देखी और इसकी सराहना करते हुए उन्होंने लिखा कि 'अभी "आवारा" की ख्याति विदेशों में नहीं हुई थी, तो भी अब तक देखे भारतीय फ़िल्मों में अच्छी है, इसमें संदेह नहीं। सब दृष्टि से अच्छा कहना पड़ेगा।'[xiv] राहुल जी ने यह भी जोड़ा कि अधिकतर हिंदुस्तानी फ़िल्मों ने उन्हें निराश ही किया है, लेकिन 'आवारा' देखकर उन्हें संतोष हुआ।

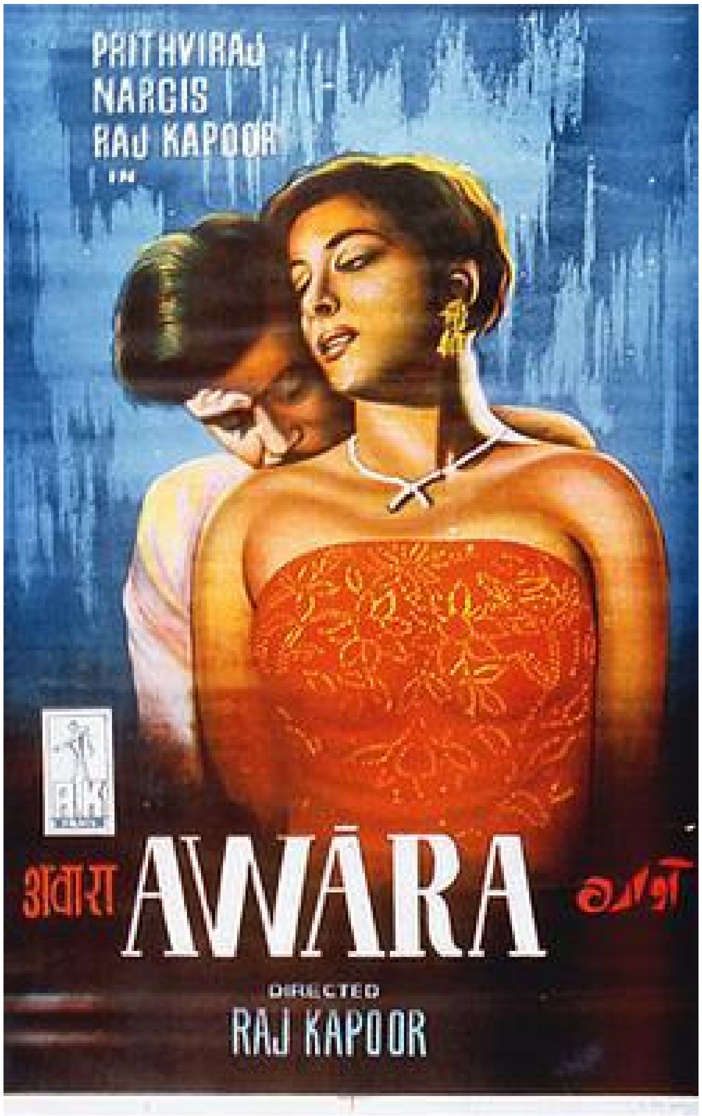

फ़िल्म 'आवारा' सोवियत रूस और चीन में भी वर्ष 1954-55 में प्रदर्शित की गई, जहाँ इसे अपार लोकप्रियता हासिल हुई थी। उल्लेखनीय है कि बीसवीं सदी के पांचवें दशक में विशेषकर स्तालिन की मृत्यु के बाद हिंदुस्तानी फ़िल्मों, 'आवारा हूँ' जैसे गीतों और राजकपूर सरीखे चर्चित भारतीय अदाकारों ने सोवियत रूस के आम लोगों के मन में अपनी ख़ास जगह बनाई थी। भारतीय फ़िल्मों की अध्येता सुधा राजगोपालन ने अपनी पुस्तक में सोवियत रूस में बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारतीय फ़िल्मों की लोकप्रियता की इस परिघटना का ऐतिहासिक विश्लेषण किया है।[xv]

जनवरी 1955 में जब राहुल सांकृत्यायन राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के आमंत्रण पर व्याख्यान देने के लिए बंबई गए हुए थे, तभी उनकी मुलाक़ात फ़िल्म जगत में सक्रिय हिंदी लेखक सुदर्शन और प्रदीप से हुई। उनकी यह मुलाक़ात चर्चगेट पर हुई थी, जहाँ राहुल जी हिंदी विद्यार्थी मंडल द्वारा बुलाई गई एक बैठक में शामिल हुए थे। हिंदी के लेखक फ़िल्म जगत में क्यों नहीं जम सके, इसके बारे में राहुल जी कवि प्रदीप की इस राय से सहमत थे कि हिंदी के वे लेखक फ़िल्मों में पंत और प्रसाद की भाषा लाना चाहते थे, जोकि संभव नहीं था क्योंकि वह भाषा आम लोगों की समझ से परे थी। राहुल जी के अनुसार, 'फ़िल्म में एक के नहीं, बल्कि लाखों के खीसों पर हाथ रखना है। गीत की भाषा ऐसी होनी चाहिए, जिसे समझने में लोगों को अधिक कठिनाई न हो। मैं पंत-प्रसाद की भाषा और उनकी कविता का प्रशंसक हूँ। खासकर प्रसाद जी को तो भारत के सर्वोच्च कवियों में मानता हूँ। पर जनसाधारण के लिए बच्चन की ही भाषा सबसे अच्छी है और वही इस विषय में सबसे बड़े कवि माने जा सकते हैं। उर्दू कविताओं में भी बहुत-से शब्द सुननेवालों के पल्ले नहीं पड़ते, पर चलती भाषा, चलते उर्दू के छंद और उसके साथ सिनेमा के धनी-धोरियों की धींगामुश्ती, सब मिलकर काम बन जाता है।'[xvi]

अंततः

राहुल सांकृत्यायन की ये टिप्पणियाँ हमें उनकी फ़िल्म संबंधी सोच, कला-दृष्टि से वाबस्ता तो कराती ही हैं। साथ ही, ये टिप्पणियाँ हिंदी में एक विधा के रूप में फ़िल्म-समीक्षा के विकास-क्रम को समझने के सूत्र भी मुहैया कराती हैं। सोवियत फ़िल्मों के अनुभव ने राहुल जी की कला-दृष्टि को परिपक्व करते हुए उन्हें सिनेमा के सामाजिक-सांस्कृतिक-ऐतिहासिक आयामों से भी रूबरू कराया। संवाद, पटकथा, संवाद अदायगी, पात्रों के चयन और उनकी वेश-भूषा, फ़िल्म में प्राकृतिक दृश्यों के इस्तेमाल जैसी बारीकियों के प्रति भी राहुल जी सजग थे। फ़िल्मी गीतों की भाषा की सहजता और लोकप्रियता के अंतरसंबंधों को समझने के साथ ही उन्होंने हिंदी के प्रचार-प्रसार में हिंदुस्तानी सिनेमा के योगदान को भी स्वीकार किया। अभिनय, कथानक, संगीत, फिल्मांकन और तकनीक जैसे सिनेमा के महत्त्वपूर्ण अवयवों के साथ-साथ राहुल जी ने ऐतिहासिकता, कालदोष, विषयवस्तु और प्रस्तुति जैसे पक्षों का भी मूल्यांकन किया। इन्हीं कसौटियों पर भारतीय और सोवियत सिनेमा की तुलना करते हुए उन्हें सोवियत फ़िल्में भारत ही नहीं विश्व सिनेमा में अग्रणी जान पड़ीं। कहना न होगा कि राहुल सांकृत्यायन की फ़िल्म संबंधी ये अंतर्दृष्टिपूर्ण टिप्पणियाँ और समीक्षाएँ हिंदी फ़िल्म अध्ययन के विकास-क्रम को समझने हेतु अपरिहार्य स्रोत हैं।

[i] हिंदी फ़िल्म अध्ययन के विकास में 'माधुरी' की ऐतिहासिक भूमिका के विश्लेषण हेतु देखें, रविकान्त, *मीडिया की भाषा-लीला*, (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2016).

[ii] राहुल सांकृत्यायन, *मेरी जीवन-यात्रा*, खंड 3, (नई दिल्ली : राधाकृष्ण, 2002), पृ. 101.

[iii] जवाहरलाल नेहरू, *सोवियत रसिया : सम रैंडम स्केचेज़ एंड इंप्रेशन*, (बंबई : चेतना, 1949 [1929]), पृ. 16.

[iv] *मेरी जीवन-यात्रा*, खंड 3, पृ. 101.

[v] वही, पृ. 102.

[vi] देखें, एमा विडिस, *विजन्स ऑफ ए न्यू लैंड : सोवियत फ़िल्म फ्राम द रिवोल्यूशन टू द सेकंड वर्ल्ड वार*, (न्यू हैवन : येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003).

[vii] *मेरी जीवन-यात्रा*, खंड 3, पृ. 110.

[viii] *मेरी जीवन-यात्रा*, खंड 2, पृ. 375.

[ix] *मेरी जीवन-यात्रा*, खंड 3, पृ. 119.

[x] आशीष राजाध्यक्ष व पॉल विलमेन, *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन सिनेमा*, (नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998), पृ. 198.

[xi] *मेरी जीवन-यात्रा*, खंड 2, पृ. 465.

[xii] *मेरी जीवन-यात्रा*, खंड 3, पृ. 182.

[xiii] वही, पृ. 275.

[xiv] *मेरी जीवन-यात्रा*, खंड 4, पृ. 84.

[xv] देखें, सुधा राजगोपालन, *इंडियन फ़िल्म्स इन सोवियत सिनेमाज़ : द कल्चर ऑफ मूवी गोइंग आफ्टर स्तालिन*, (ब्लूमिंगटन : इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस, 2008).

[xvi] *मेरी जीवन-यात्रा*, खंड 4, पृ. 200.

लेखक के बारे में

शुभनीत कौशिक

सेंटर फॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज़, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से पी-एच.डी., शोध-शीर्षक - 'मेकिंग ऑफ ए लिटरेरी वर्ल्ड : हिन्दी साहित्य सम्मेलन एंड नॉलेज प्रोडक्शन इन द हिन्दी पब्लिक स्फियर, 1910-1960'
आधुनिक भारत के इतिहास, महात्मा गांधी के जीवन दर्शन और हिंदी साहित्य के इतिहास में गहरी रुचि. हिंदी की पत्रिकाओं में इतिहास और समकालीन मुद्दों पर नियमित लेखन.
संप्रति : असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, सतीश चंद्र कॉलेज (बलिया).

इस लेखक द्वारा पुस्तकें

भारत छोड़ो आंदोलन और आज़मगढ़ : रॉबर्ट निबलेट की डायरी

भारत छोड़ो आंदोलन में पूर्वी उत्तर प्रदेश की भागीदारी, बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी के छात्रों की सक्रिय सहभागिता और बलिया में चित्तू पांडे के नेतृत्व में समांतर सरकार की स्थापना तो सर्वविदित ही है। पर इस संदर्भ में, पूर्वी उत्तर प्रदेश के ही आजमगढ़ और मऊ जैसे क्षेत्रों की चर्चा कम ही होती है। बावजूद इसके कि आजमगढ़ के तत्कालीन जिलाधिकारी रॉबर्ट निबलेट ने उस वक़्त के अपने अनुभवों को डायरी में दर्ज़ किया था, जो 1957 में “द कांग्रेस रेबेलियन इन आजमगढ़” शीर्षक से प्रकाशित की गई। अपने इस संस्मरण में निबलेट ने अगस्त-सितंबर 1942 के दौरान आजमगढ़ और मऊ की स्थिति का आंखों-देखा विवरण प्रस्तुत किया है।